शुक्ल यजुर्वेद में धूर्तों द्वारा मिलाये गये 75 निकृष्ट मन्त्रों को हटाये जाने हेतु सभी के सहयोग के लिये विनम्र प्रार्थना

विधुशेखर त्रिवेदी

वैदिक धर्म की रक्षा हेतु

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान एवं

पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ,

6B वृन्दावन लखनऊ, 226029

द्वारा प्रकाशित

मुद्रक श्री विनायक प्रेस, लखनऊ

2024 प्रथम संस्करण 500 प्रतियाँ

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S
(अ.प्रा)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य 30.00

विनम्र निवेदन

सर्वप्रथम माँ वैष्णव देवी जी को प्रणाम करके उनकी असीम कृपा का उल्लेख कर रहा हूँ।

माँ वैष्णव जी की मेरे तथा मेरे परिवार के ऊपर असीम कृपा है। इसका श्रेय मेरे जन्म स्थान राजा का रामपुर जिला एटा में मेरे घर के समीप रहने वाले हमारे मास्टर साहब ठाकुर हुक्म सिंह जी राठौर, जो बचपन में मुझे अंग्रेज़ी पढाते थे, के भतीजे, जिन्हें मै प्यार से मुन्ना कहता हूँ, को जाता है।

श्री मुन्ना पर माँ वैष्णव देवी जी की अनोखी कृपा है । उनके द्वारा भेजे गये पत्रों का उचित उत्तर देवी जी की ओर से उनकी योगिनी जी द्वारा तुरन्त दिया जाता है। इस प्रकार के पत्रों द्वारा मैने कई बार अपनी कठिनाईयों के विषय में माँ का मार्गदर्शन और आशीर्वाद प्राप्त किया है। मेरे द्वारा बताये जाने पर अनेक वरिष्ठ अधिकारियों ने भी इसका लाभ उठाया है। एक सीनियर आई.ए.एस अधिकारी तो उनको अपना गुरू मानते हैं।
इसी प्रकार के मेरे एक पत्र के उत्तर में माँ ने सूचित किया था कि मेरे पूज्य माता पिता दोनों वैकुण्ठ धाम में हैं ।

लगभग 17 वर्ष पूर्व मेरे एक अत्यन्त प्रिय व्यक्ति का अपहरण हो गया था जिसे हम लोग नहीं खोज पा रहे थे। जब मैनें देवी माँ को अपना दुःख बताया तो उनकी

योगिनी जी ने मुझसे फोन पर कहा "बेटा तुम परेशान न हो मै कल स्वयं आकर उसकी खोज करूँगीं । दूसरे दिन योगिनी जी स्वयं आयीं और उसका पता लगाकर उसे अपहर्ताओं से मुक्त कराकर मेरे पास भेज दिया। माँ की इससे बडी कृपा क्या हो सकती है

माँ की इस महान कृपा के कारण जीवन के अन्तिम समय, 94 वर्ष की आयु में मेरी यह तीव्र इच्छा हुयी कि माँ वैष्णव देवी जी के मन्दिर का निर्माण करवाऊँ ताकि सभी लोग उनकी कृपा प्राप्त कर सकें। इसी लिये मैने अपने पूज्य पिता की स्मृति में स्थापित पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ में एक छोटे से सुन्दर मन्दिर का निर्माण करवाया।

माँ वैष्णव देवी जी के नाम से कोई मूर्ति उपलब्ध न होने के कारण मैने श्री मुन्ना जी से इस विषय में स्वयं देवी जी से पूछकर बताने को कहा। तब माँ ने अपने पत्र में मुझे लिखकर भेजा "प्रिय विधुशेखर आशीवाद। मेरी मूर्ति 10 तारीख दिन बुधवार विराजमान स्थापित करना। आगे चलकर माँ की कृपा रहेगी। शुभ्रम (मेरे पौत्र) का भविष्य अच्छा है। नाम रोशन करेगा। प्रेमा (मेरी स्व. धर्मपत्नी) को वैकुण्ठ धाम मिल गया है। जब मूर्ति स्थापित करना उस दिन कन्या खिलाना। शेर का मुँह बन्द होना चाहिए। मूर्ति अष्ट भुजा होनी चाहिए।

(जय माता दी)

जय वैष्णव देवी कटरा, तारा योगिनी

माँ के इस स्पष्ट आदेश के बाद मैने 38 हजार रुपये मूल्य की एक मूर्ति पसन्द कर ली और 5 सौ रुपया एडवांस दे दिया किन्तु दूसरे दिन 22 मार्च 2024 को देवी जी की कृपा से श्री मुन्ना जी हमारे यहाँ आ गये और मुझसे कहा कि भइया! मूर्ति मत खरीदना, देवी जी स्वयं प्रकट हो जायंगी। वह बाज़ार से एक बड़ा बक्स खरीद लाये और उसमें एक लाल कपड़ा रख दिया तथा मुझसे कहा कि एक पत्र माता जी को लिख दीजिये।

मैनै उनके कथनानुसार देवी माँ को पत्र में लिखा कि कृपया आप अपने मन्दिर में स्वयं प्रकट हो जायं ताकि आपके आदेशानुसार आपकी मूर्ति की स्थापना की जा सके। इसके बाद बक्स को बन्द कर दिया गया और दोनों समय की आरती के साथ साथ श्रद्धा एवं विश्वास से निरन्तर प्रार्थना की गयी, जिसके फलस्वरूप सदा की भाँति माँ ने मेरे ऊपर असीम कृपा की और अपने द्वारा पूर्व निर्धारित तिथि पर रात्रि के 2 बजकर 15 मिनट पर उक्त बक्स में प्रकट हो गयीं, जिसकी शुभ सूचना मुझे श्री मुन्ना जी ने फोन द्वारा दिनाँक 10.4.24 को प्रातः काल दी। तब मैने अपने अनेक परिचित व्यक्तियों को फोन करके बुलाया और लगभग 9 बजे सब लोगों की सहायता से उनकी भव्य एवं सुन्दर मूर्ति को निकालकर विधि विधान से स्थापित कर दिया ।

अब मेरा प्रयास है कि सभी लोग इस दैवी चमत्कार को आकर देखें और माँ का दर्शन करके अपनी मनोकामनायें

पूर्ण करें। इस पवित्र कार्य में सब के सहयोग की अपेक्षा है।

देवी जी की शक्ति तथा उनकी अद्भुत कृपा का उक्त वर्णन निम्नकिंत मन्त्रों से सत्य प्रमाणित होता है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।

अथर्व. ४।३०।१, ऋग्.१०।१२५।१

(अहं रुद्रेभिः, वसुभिः, आदित्यैः उत विश्वदेवैः चरामि) मैं (परमात्म शक्ति) रुद्रों के, वसुओं, आदित्यों तथा विश्वदेवों के साथ चलती हूँ। (अहं मित्रावरुणा उभा बिभर्मि) मैं मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ तथा (अहं इन्द्राग्नी उभा अश्विना अहम्) मैं ही इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनी देवों को धारण करती हूँ।

आठ वसु-

अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्चनक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳसर्वꣳहितमिति तस्माद् वसव इति। बृहदारण्यक उपनिषद्,३।९।३

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्युलोक, आदित्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र, ये सब को वसाते हैं, जीवित रखते हैं, इसलिये इन सबको वसु कहा जाता है।

रुद्र- दश प्राण तथा आत्मा को भी रुद्र कहा जाता है क्योंकि जब ये शरीर से निकलते हैं तो प्रेम करने वालों को रुलाते हैं।

आदित्य- संवत्सर के बारह मासों को भी आदित्य कहा जाता है क्योंकि ये मनुष्य की आयु लेते हुये जाते हैं।

मित्र वरुण- दिन और रात तथा सूर्य और चन्द्रमा को भी मित्रावरुणौ कहा जाता है।

अश्विनौ- दिन और रात तथा द्युलोक और पृथिवी को भी अश्विनौ कहा जाता है।

मित्रावरुणौ- सूर्य तथा चन्द्रमा। दिन तथा रात्रि

अश्विनौ- **अहो रात्रौ** (निरु. १२।१।१) सूर्य तथा चन्द्रमा।

अहं सोमंमाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३ यजमानाय सुन्वते।।
अथर्व.४।३०।६, ऋग्.१०।१२५।२

(अहं आहनसं सोमं बिभर्मि) मैं रात्रि के अन्धकार रूपी शत्रु का हनन करने वाले सोम अर्थात् चन्द्रमा, (अहं त्वष्टारं उत पूषणं भगम्) मैं त्वष्टा और पूषा तथा भग को धारण करती हूँ। (अहं हविष्मते सुन्वते यजमानाय) मैं अन्न आदि हविष्य पदार्थों की उत्तम हवियों से देवों को तृप्त करने वाले तथा सोमयज्ञ करने वाले यजमान को (सुप्राव्ये द्रविणं दधामि) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाला धन प्रदान करती हूँ।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।
अथर्व.४।३०।२, ऋग्.१०।१२५।३

(अहं राष्ट्री वसूनां संगमनी) मैं समस्त जगत् की तथा समस्त सम्पत्तियों की स्वामिनी हूँ और धन प्रदान करने वाली हूँ। (यज्ञियानां प्रथमा चिकितुषी) मैं ज्ञानवती हूँ तथा यज्ञों में पूजनीय देवों में प्रथम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हूँ। (तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशयन्ती) उस अनेक रूपों में विद्यमान तथा सबका भरण पोषण करने वाली मुझ को ही (देवाः पुरुषा वि अदधुः) देव अनेक प्रकार से प्रतिपादित करते हैं, वर्णित करते हैं।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।।
अथर्व.४।३०।४, ऋग्.१०।१२५।४

(सः यः अन्नं अत्ति) वह जो अन्न खाता है, (यः विपश्यति) जो देखता है, (यः प्राणिति) जो प्राण धारण करता है, (यः ईं श्रृणोति) जो इस कथन को श्रवण करता है, (मया) वह सब मेरी सहायता से करता है। (मां अमन्तवः ते उपक्षियन्ति) जो मुझे नहीं मानते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, नीचे गिर जाते हैं, दुःख एवं कष्ट को प्राप्त होते हैं। (श्रुत श्रुधि) हे प्राज्ञ मित्र! तुम सुनो (ते श्रद्धिवं वदामि) तुम्हें मैं श्रद्धेय ज्ञान को कहती हूँ, उपदेश करती हूँ।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।
अथर्व.४।३०।३, ऋग्.१०।१२५।५

(अहं) मैं स्वयं ही (देवानाम् उत मानुषाणाम्) देवों तथा मनुष्यों के लिये (जुष्टम्) हितकारी (इदम् वदामि) यह बात कहती हूँ कि (यं कामये) मैं जिसकी कामना करती हूँ, जिसे अच्छा तथा कृपापात्र समझती हूँ, (तम् उग्रं) उसी को तेजस्वी तथा श्रेष्ठ बनाती हूँ, (तं ब्रह्माणं) उसी को ब्रह्मा अर्थात् वेदों का ज्ञाता, (तम् ऋषिं) उसी को ऋषि (तम् सुमेधाम्) तथा उसी को उत्तम मेधा वाला (कृणोमि) बनाती हूँ।

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानिन विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिना सं बभूव।।

अथर्व.४।३०।८, ऋग्.१०।१२५।८

(विश्वा भुवनानि आरभमाणा) सब भुवनों का निर्माण करती हुयी, (अहमेव वातः इव प्रवामि) मैं ही वायु के समान प्रवाहित हो रही हूँ, (दिवा परः) द्युलोक (एना पृथिव्यै परः) तथा इस पृथिवी से श्रेष्ठ मैं (एतावती महिना सं बभूव) अपनी इतनी बड़ी महिमा से, अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट हुयी हूँ।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

शंखचक्रगदा शाङ्र्ग गृहीत परमायुधे।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तुते।।

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

धर्म

ऋषियों ने धर्म की व्याख्या निम्न प्रकार की है।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।।

वैशेषिक दर्शन. १।२

जिससे सब प्रकार का अभ्युदय तथा परम कल्याण हो, वही धर्म है।

हमारे आदि पुरुष भगवान् मनु द्वारा धर्म के लक्षण निम्न प्रकार बताये गये हैं –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं ।।

मनुस्मृति ६।९२

धैर्य, दृढ़ता, क्षमा, मन का संयम, चोरी न करना, शरीर मन एवं बुद्धि की पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह, सद्बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अकारण क्रोध न करना, ये धर्म के दश लक्षण हैं।

इन लक्षणों के अनुरूप आचरण करना धर्म है, किसी प्रकार का दिखावा अथवा ढोंग धर्म नहीं है।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणं ।।

मनु. २।१२

वेद, स्मृति, सदाचार, सत्पुरुषों का आचरण और अपने आत्मा

को प्रसन्न तथा सन्तुष्ट करने वाला, अन्तरात्मा के अनुसार किया गया श्रेष्ठ आचरण, ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण कहे जाते हैं।

समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ।।

मनु. ६।६६

समस्त प्राणियों में समत्व का भाव रखना, सबसे समता का व्यवहार करना धर्म है, मालां, तिलक आदि दिखावटी चिह्न धर्म का कारण नहीं हैं।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्।। मनु. ८।१५

नष्ट हुआ धर्म ही मारता है अर्थात् धर्म का पालन न करने से मनुष्य पतन की ओर चला जाता है, दुःख एवं कष्टों को प्राप्त करता है जब कि रक्षा किया हुआ धर्म उन्नति की ओर ले जाता है। अतः अधर्म कहीं हमें नष्ट न कर दे यह विचार करके धर्म की रक्षा करना चाहिये, धर्म का पालन करना चाहिये।

यशः सत्यं दमः शौचमार्जवं ह्रीरचापलम् ।
दानं तपो ब्रह्मचर्यमित्येतास्तनवो मम ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९८।७

धर्म ने महाराज युधिष्ठिर से कहा कि यश, सत्य, इन्द्रिय संयम, पवित्रता, सरलता, लज्जा, धैर्य, दान, तप और ब्रह्मचर्य यह सब मेरे शरीर के अंग हैं।

अहिंसा समता शान्तिस्तपः शौचममत्सरः ।
द्वाराण्येतानि मे विद्धि प्रियो ह्यसि सदा मम।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९८।८

अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शौच तथा प्रमादरहित होना यह मेरी प्राप्ति के द्वार हैं यह जानो। हे युधिष्ठिर! तुम सदा से मुझे प्रिय हो।

दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः ।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम्।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।४९

दक्षता ही धर्म का एक मात्र स्थान अर्थात् साधन है, दान ही यश का एक मात्र साधन है, सत्य स्वर्ग का एकमात्र साधन है तथा शील ही सुख का एक मात्र उपाय है।

वास्तव में दक्षता से कार्य करने से ही धर्म का आचरण होता है।

ऋषियों के उक्त कथन से स्पष्ट है कि धर्म में असत्य, दिखावा, ढ.ोंग तथा दुराचार आदि का कोई स्थान नहीं है। मनुस्मृति में कहा गया है **'वेदोंखिलो धर्म मूलम्'** वेद ही हमारे धर्म का आधार है अतः वेद विरुद्ध आचरण धर्म नहीं हो सकता ।

वेद भगवान के द्वारा उत्पन्न किये गये है, भगवान की वाणी है तथा अपौरुषेय है इसीलिये उनका सर्वोच्च स्थान है।

वेद

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांᳬसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।

ऋग्. १०।९०।९, यजु. ३१।७
कृष्ण यजु. ३५।१०, अथर्व. १९।६।१३

सभी आहुतियाँ जिसके लिये दी जाती हैं, उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परब्रह्म से ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुये, उससे अथर्ववेद उत्पन्न हुआ तथा उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।।

मनु. २।१३

जो धन सम्पत्ति के लोभ तथा काम अर्थात् विषय वासना के भोगों में लिप्त नहीं होता, उसी को धर्म का ज्ञान होता है। धर्म को जानने की इच्छा करने वालों के लिये वेद ही परम प्रमाण हैं।

योऽवन्मन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ।।

मनु. २।११

जो मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्त ग्रन्थ का अपमान करे, उसको श्रेष्ठ लोगों द्वारा बहिष्कृत कर दिया जाना चाहिये। वेद की निन्दा करने वाला नास्तिक होता है।

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्।।

मनु. १२।९९

सनातन वेदशास्त्र ज्ञान एवं कर्म आदि के द्वारा समस्त प्राणियों को धारण करने वाला है अस्तु इसे प्राणियों के कल्याण के लिये सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है।

कितना दुःखद है कि इस समय सनातन धर्म, जोकि वास्तव में वैदिक धर्म का विकृत रूप है, के नाम पर तरह तरह की असत्य निराधार एवं भ्रामक बातों पर विश्वास किया जा रहा है और वैदिक ज्ञान को पूर्णतया विस्मृत कर दिया गया है। जिन नवयुवकों को वेद पढ़ाया भी जा रहा है उन्हें वेद मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं बताया जाता है। वह यही नहीं जान पाते कि वेदां में क्या लिखा है और वह क्या पढ़ रहें है। वेदों की ऐसी शिक्षा से क्या लाभ ?

दुर्गति यहाँ तक है कि गत लगभग 2500 वर्षों में धूर्तो द्वारा जो फर्ज़ी मन्त्र मिला दिये गये है, जिनमें गाय, बैल, भेड़, बकरे आदि को काटकर उनके रक्त, मांस, वपा, तथा मदिरा से यज्ञो में आहुति देने का उल्लेख है, उनको हटाने के लिये कोई तैयार नहीं है। अकेले शुक्ल यजुर्वेद में ही 75 फर्ज़ी वेद मन्त्र हैं, जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है

अक्षय तृतीया

दिनांक 10.5.2024 विधुशेखर त्रिवेदी

शुक्ल यजुर्वेद संहिता में की गयी गम्भीर मिलावट का तथ्यात्मक विवरण

शौनक ऋषि ने लगभग 2800 वर्ष पूर्व चरणव्यूह में लिखा था कि शुक्ल यजुर्वेद में 1900 मन्त्र हैं जबकि इस समय इसमें 1975 मन्त्र हैं।

इसके लगभग 400 वर्ष पश्चात् कात्यायन मुनि ने यजुर्वेद सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में ही लिखा है **''माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुकिय ऋषिदैवतछन्दाꣳ स्यानुक्रमिष्यामः'** अर्थात् खिल और शुक्रिय मंत्रो के सहित माध्यन्दिनी यजुर्वेद के ऋषि देवता और छन्दो की अनुक्रमणी बनाता हूँ।

खिल का अर्थ है बाद में मिलाये गये मन्त्र।

इससे स्पष्ट है कि सर्वानुक्रमणी लिखे जाने के पूर्व ही यज्ञों में मेद–मांस मदिरा की आहुतियाँ दिये जाने आदि से संम्बन्धित 75 फ़र्जी मन्त्र मिलाये जा चुके थे। इसी काल में शतपथ ब्राह्मण, मनुस्मृति, तथा गृह्य सूत्रों आदि में भी गम्भीर मिलावट की गयी, जिसका हम लोगों की अकर्मण्यता उदासीनता तथा बुराइयों को मौन सहमति देने एवं यथास्थित बनाये रखने के स्वभाव के कारण आजतक निराकरण नहीं हो सका है।
उवट का भाष्य 11वीं शताब्दी का 'अर्थात् चरणव्यूह के लगभग 1700 वर्ष बाद का है तथा महीधर का भाष्य 16वीं शताब्दी का है।

उपरोक्त 75 मिलावटी, मन्त्र, गाय, बैल, भेड़, बकरे तथा घोड़े आदि की वपा अर्थात चर्बी और माँस तथा मदिरा से

यज्ञ में आहुति देने और उनका भक्षण करने एवं अश्वमेध यज्ञ में अश्लीलता से सम्बन्धित हैं, जब कि यजुर्वेद में अन्यत्र कहीं इस प्रकार के घृणित कर्मों का उल्लेख नहीं हैं।

वेद के सभी मन्त्र सत्य, सदाचार, पराक्रम, प्राणिमात्र से प्रेम, हिंसा रहित यज्ञ, ईश्वरोपासना तथा ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देते हैं जिससे स्पष्ट है कि ये 75 मन्त्र वेद में बाद में धूर्तों द्वारा मिलाये गये हैं – जैसा कि महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है –

सुरां मत्स्यान्मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।

धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद्वेदेषु कल्पितम्।

मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्।

महा.शा.264/9–10

यज्ञों में मद्य, माँस आदि का प्रचार तो लोभी, लोलुप और धूर्तों ने किया है, इसका वेदों में कोई उल्लेख नहीं है

इससे स्पष्ट है कि माँस मदिरा तथा पशुवध से संबन्धित मन्त्र बाद में मिलाये गये हैं, जिन्हें वेदों से हटाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इन मिलावटी मन्त्रों का विवरण निम्न प्रकार है –

यजुर्वेद अध्याय 21

मन्त्र सं. 41 –

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताꣳ हविर्होतर्यज।
होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज।
होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज।। 41

इसका सीधा अर्थ है –

1. होता ने अश्विनी कुमारों के लिये बकरे की चर्बी और माँस से यज्ञ किया। हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। अश्विनौ बकरे की वपा और मेद का आस्वादन करें

2. होता ने सरस्वती का मेढ की वपा और माँस से यजन किया, हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। सरस्वती वपा और मेद का सेवन करें।

3. होता ने बैल की वपा और माँस से इन्द्र का यजन किया, हे होता! तुम भी उसी प्रकार यजन करो। इन्द्र बैल की वपा और मेद का आस्वादन करें।

कृपया काशो से प्रकाशित उवट तथा महीधर का भाष्य देखने का कष्ट करें।

हलायुध कोष के अनुसार वपा मेदः वसा (माँस प्रभव धातु विशेषः)। शुद्ध माँसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता – इति सुश्रुतः। माँस रोहिणी।

मेदः– यन्मासं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते।

मेदो हि सर्व भूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम्–

इति भाव प्रकाशः।

वपा अथवा वसा माँस से उत्पन्न होती है। शुद्ध माँस की जो चिकनाई होती है, उसे वसा कहा जाता है।
शरीर की अपनी अग्नि से पका हुआ जो माँस होता है उसे मेद कहते हैं। यह प्राणियों के उदर में स्थित रहता है। '

आर्य समाज द्वारा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के नाम से जो भाष्य प्रकाशित किया गया है, उसमें इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार दिया गया है, 'जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं, वे आप भी बलवान होते हैं और जो पशुओं से उत्पन्न हुये दूध और उससे उत्पन्न हुये घी का सेवन करते हैं, वे कोमल स्वभाव वाले होते हैं।

इस भावार्थ का मन्त्र में प्रयोग किये गये शब्दों से कोई सम्बन्ध नहीं है और यह मन्त्र के वास्तविक अर्थ से सर्वथा विपरीत है। श्री सातवलेकर जी ने इस मन्त्र की पहली पंक्ति के अर्थ में तो बकरों की वपा से आहुति का उल्लेख किया है किन्तु दूसरी पंक्ति के अर्थ में, वपा का अर्थ बीज बढ़ाने की क्रिया तथा चिकने घृत आदि पदार्थ किया है तथा तीसरी पंक्ति के अर्थ में वपा का अर्थ बैल के बढ़ाने वाले भाग से किया है, जो स्पष्ट रूप से गलत है।

ऐसा केवल इसलिये किया गया है कि किसी को यह पता न चले कि वेदों में दुष्टों द्वारा मिलावट करके माँस और मदिरा का प्रयोग यज्ञों में किये जाने का उल्लेख किया गया है।

संभवतः इन विद्वानों का विचार यह रहा होगा कि यदि वह धूर्तों द्वारा मिलायी गयी पशु वध, क्रूरता तथा अश्लीलता की बातों को उल्लेख कर देगें तो इससे वेदों का अपमान होगा। विचारणीय है कि क्या इतने बड़े विद्वानों द्वारा इस प्रकार सत्य को छिपाना उचित था।

इसी अध्याय के मं. सं. 40 में कहा गया है 'मेदसां पृथक् स्वाहा'। होता विभिन्न पशुओं की चर्बियों से पृथक् पृथक् स्वाहा कहकर आहुति दे। अश्विनौ के लिये छाग अर्थात् बकरे की, सरस्वती के लिये मेष अर्थात् भेड़ की तथा इन्द्र के लिये ऋृषभ अर्थात् बैल की वपा से आहुति दे।

मं. सं. 42 में कहा गया है कि अश्विनौ छाग के माँस का भक्षण करें। मोटे ताजे अंगों के पास से निकाले गये तथा बगल और योनि आदि से खोद तथा काट कर निकाले गये और अग्नि के द्वारा परिपक्व किये गये इन माँस–वपा खण्डों का भक्षण करके अश्विनौ, सरस्वती तथा इन्द्र तृप्त हों। मं. सं. 43 में उपरोक्त बात अश्विनौ के लिये बकरे के माँस के सम्बन्ध में कही गयी है।

मं. सं. 44 में उपरोक्त बात ही सरस्वती के लिये मेष के माँस के सम्बन्ध मे कही गयी है

मन्त्रं सं. 45 में यही बात इन्द्र के लिये ऋषभ के माँस के सम्बन्ध में कही गयी है।

मं. सं. 46 तथा 47 मे भी छाग, मेष तथा ऋषभ के माँस की आहुतियाँ दिये जाने का उल्लेख है।

मं. सं. 59 में पुरोडाशों को पकाने तथा अश्विनौ के लिये बकरे को, सरस्वती के लिये मेष को तथा इन्द्र के लिये बैल को काटने के लिये यूप में बाँधने का उल्लेख किया गया है।

मं. सं. 60 में कहा गया है कि अश्विनौ, सरस्वती तथा इन्द्र ने क्रमशः बकरे, मेष तथा बैल के मेद से प्रारम्भ करके शेष अंगों से पकाये गये पुरोडाशों का भक्षण किया और सुरा तथा सोम का पान करके वृद्धि को प्राप्त किया।
इस अध्याय के मं. सं. 29 से लेकर 40 तक सभी मन्त्रों में सोम, मधु आदि के साथ 'परिश्रुता' शब्द, जिसका अर्थ मदिरा होता है, से आहुति देने का प्रविधान किया गया है किन्तु आर्य समाज द्वारा स्वामी दयानन्द जी के नाम से प्रकाशित हिन्दी भाष्य तथा सातवलेकर जी द्वारा किये गये भाष्य में परिश्रुता का अर्थ 'सब ओर से प्राप्त रस किया गया है', जो स्पष्ट रूप से गलत है।

अध्याय 22

इस अध्याय के मं. सं. 7 में अश्व के हिंकार करने के लिये स्वाहा, उसके बैठने के लिये स्वाहा, उसके सोने के लिये स्वाहा, उसके जागने के लिये स्वाहा आदि निरर्थक बाते लिखी गयी हैं जिनसे यज्ञ और स्वाहाकार का अपमान होता है।

मं. सं. 8 की भी यही स्थिति है। इसमे कहा गया है कि अश्व के खाने के लिये स्वाहा, पीने के लिये स्वाहा, **'यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा'** जो मूत्र करता है उसके लिये स्वाहा आदि।

अध्याय 19

इस अध्याय के मं. सं. 14 तथा 15 में सुरा बनाये जाने का उल्लेख है।

मं. सं. 16 में उत्तर वेदी का उल्लेख है। इस उत्तर वेदी में ही पशुवध किया जाता था। मन्त्र में उत्तर वेदी में सुरा धानी अर्थात् सुरा रखने के पात्र का भी उल्लेख है।

उत्तर वेदी में ही पशुओं को पकाते हैं। – '

शतपथ ब्राह्मण 12 ।9 ।3 ।11

मं. सं. 31 में कहा गया है कि सौत्रामणी यज्ञ में सुरा सोम अभिषुत होने पर यजमान सोम यज्ञ के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

मं. सं. 32 में सौत्रामणी यज्ञ को **सुरावन्तं बर्हिषदम** कहा गया है।

सुरावान्वा एष बर्हिषद्यज्ञो यत्सौत्रामणी। शतपथ 12। 8 ।1 । 2

यह जो सौत्रामणी यज्ञ है वह 'सुरावान् बर्हिषद्' है।

यह सौत्रामणी यज्ञ सुरा से किया जाता है। शतपथ 12 ।9 ।1 ।1

मं. सं. 33 में कहा गया है कि हे सुरे! ओषधियों में वर्तमान जो तुम्हारा रस एकत्र किया गया है और सुरा के साथ अभिषुत सोम का जो बल है, उस मदकर रस से तुम यजमान, अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि को तृप्त करो।

मं. सं. 35 में भी सुरा के कुछ अंश के साथ मिले हुये सोम का पान करने का उल्लेख है।

अध्याय 6

अध्याय 6 में पशुबध का वीमत्स वर्णन है।

मं. सं. 7 के सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण 3/7/3/3 में कहा गया है कि पशु को लाकर तथा अग्नि को मथकर पशु को यूप से बांधते हैं। मन्त्र में कहा है 'उपावीरसि .....' दैवी लोग देवो के पास आये हैं।' ये जो पशु है वे दैवी लोग हैं। जब वह 'उपदेवान्' कहता है तो उसका तात्पर्य है कि पशु देवों के वश में आ गया है । **'देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम्।** हे पशो! तुम्हारे हविर्भूत माँस आदि का देव आस्वादन करें।

मं. सं. 8 में पहले कहा गया है कि हे धन देने वाली गायो! तम यजमान के घर में सुख से रहो। फिर कहा गया है कि हे देवहविः अर्थात् देवों के हवि रूप पशो! मैं तुम्हें (ऋतस्य) यज्ञ के बन्धन से बाँन्धता हूँ।

(अर्थ में आगे लिखा है कि मन्त्र पढकर पशु की सीगों में रस्सी बाँन्धना और उससे कहना कि अब शमिता अर्थात् काटने वाला तुम्हें अपने वश में करे। यहाँ स्पष्ट रूप से वध के लिये गाय को काटे जाने के लिये बाँधने का उल्लेख है।

मं. सं. 9 में कहा गया है (मन्त्र पढ़कर पशु को खम्भे से बाँधना और दर्भो से पशु पर जल छिड़कना।) **अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।** हे पशो ! मैं तुम्हें

अग्नि और सोम की स्वादिष्ट तथा प्रिय हवि बनाने के लिये दिव्य जल से प्रोक्षित करता हूँ।

मं. सं. 10 में कहा गया है कि पशु के उदर आदि निम्न भागों का प्रोक्षण करना और मन्त्र पढ़कर पशु के ऊपर सर्वत्र जल छिड़कना। **'आपो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित् सद् देव हविः'** दिव्य जल तुझको सच्ची **देव हवि** के लिये स्वादिष्ट बनायें। हे पशो! तुम्हारा प्राण बाह्य प्राण से संगत हो अर्थात् वायु में मिल जाय और तुम्हारें अंग प्रत्यंग यजनीय देव से संगत हों।

मं. सं. 11 में कहा है कि पशु को मारने के लिये नियुक्त व्यक्ति के हाथ से पशु को काटने की असि और स्वर को हाथ में लेकर उन दोनों को घृत से आलिप्त करके कहे कि हे असे! और स्वरो! तुम इस काटे जाने वाले पशु की रक्षा करो। (काटने वाले औज़ारों से ही कहा जा रहा है कि तुम काटे जाने वाले पशु की रक्षा करो। क्रूरता, निकृष्टता तथा संवेदनहीनता की पराकाष्ठा है यह।)

' शतपथ 3/8/1/16 में लिखा है कि जब वे इसको पकड़ कर नीचे गिरा देते है तो गला घोटने से पहले आहुति देते है 'स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा'। इस प्रकार सब देवों को प्रसन्न करते हैं।

फिर घड़े में रखे हुये जल से कहा जाता है कि तुम इस पशु को शुद्ध कर दो ताकि इसे देवों द्वारा प्राप्त किया जा सके।

मं. सं. 14 के अनुसार यजमान की पत्नी जल से पशु के शिश्न, गुदा आदि सब अंगो को धोकर पवित्र करती है।

मं. सं. 15 के अनुसार तीन दर्भों को पशु की छाती पर रखा जाता है और यजमान पशु की त्वचा उधेड़ने के लिये तलवार हाथ में लेकर तलवार से कहता है कि तुम इस पशु की आत्मा

को दुखी मत करना। (फिर उसी प्रकार की क्रूरता तथा संवेदन हीनता)

मन्त्र सं. 16–शतपथ में लिखा है कि जहाँ पशु का चमड़ा उधेड़ा जाय या रक्त निकले वहाँ, दोनों ओर से इसके नीचे के भाग में **रक्षसां भागोऽसि** मन्त्र से रुधिर लगा देता है। पशु की त्वचा उधेड़ने के बाद उसकी छाती पर रखे तृणों के टुकड़ों को अध्वर्यु पशु के खून में भिगो दे और मिट्टी के ढ़ेर पर फेंक दे तथा पशु के उदर से निकाली गयी मेद को, मेद निकालने वाली दोनों लकड़ियों में आलिप्त करके उन दोनों लकड़ियों को आहवनीय अग्नि में होम कर दे।

मं. सं. 17 में जल से प्रार्थना की जाती है कि जो पाप मैंने किया है उस पाप से मुझे मुक्त कर दो।

मं. सं. 18 में कहा गया है कि पहले पशु के हृदय को छौंके, फिर शेष सर्वांग माँस को छौंके और कहे कि हे पशो! तुम्हारा मन और प्राण देवों के मन और प्राण से संगत हो। इस प्रकार वसा होम के द्वारा दुर्भाग्य दूर हुआ। (इसके बाद घृत और वसा को तलवार से मिश्रित करके वसाज्य बनाना)।

मं. सं. 19 में कहा गया है (घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः) – कि वसा पीने वाले पितरो तुम वसा का पान करो। हे वसाज्य! तुम देवों एवं पितरों की हवि हो। यह अग्नि में आहुति है **'दिग्भ्यः स्वाहा।** वसा होम रस है इस रस को सब दिशाओं में पहुँचाता है।

मं. सं. 20 में कहा गया है, हे त्वष्टा देव! तुम्हारी शक्ति से इस पशु के अंग अंग यथा पूर्व संधित हो जायँ और पशु से

कहा गया है कि तुम्हारे सखा और माता पिता तुम्हाारे देव लोक को जाने से प्रसन्न हों (कैसी Hypocrisy है यह)

मं. सं. 21 में कहा गया है कि वध्य पशु की पकाकर रखी हुई गुदा के एक तिहाई भाग को तिरछा काटकर ग्यारह टुकड़े करले और मन्त्र में आये हुये विभिन्न शब्दों जैसे **'समुद्रं गच्छ स्वाहा'** आदि से एक एक करके टुकड़ों की आहुति दे।

मं. सं. 22, इसमें वरुण से प्रार्थना की गयी है कि न मारने योग्य गौ आदि पशुओं को मार कर जो हमने पाप किया है उससे हमे छुड़ाओ **'सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु'** जल तथा ओषधियाँ हमारी सुमित्र हों।

अध्याय सं. 8

मन्त्र सं. 28 – 'एजतु दशमास्यो गर्भः'..... शतपथ ब्राह्मण 4/5/1/5 में कहा गया है कि अब मित्र और वरुण के लिये अनुबन्ध्या गाय को मारते हैं । यदि बन्ध्या गाय न मिले तो बैल ही सही। 4/5/1/9

वे वशा का आलभन करते है और उसे मारते है। मारने के बाद कहते हैं वपा को निकालो और गर्भ को खोजो। जब गर्भ निकल आवे तो इस मन्त्र को पढ़े **' एजतु दशमास्यो गर्भः'**। इसके पश्चात् वशा गाय को काटने और पकाने का उल्लेख है।
मन्त्र सं. 29 'यस्ये ते यज्ञियो गर्भो ..... से तथा मन्त्र सं. 30 'पुरुदस्मो विषुरूप' से आहुतियाँ दिये जाने का उल्लेख है।

अध्याय सं. 25

मन्त्र सं. 32 – इसमें कहा गया है कि अश्वमेध के अश्व के माँस का जो भाग मक्खी ने खा लिया है, जो यूप अथवा तलवार में लगा रह गया है या कसाई के हाथ में लगा रह गया है, वह सब देवो को प्राप्त हो।

मन्त्र सं. 33 में कहा गया है मांस को ठोक से पकावे, न गला दे, न कच्चा छोड़ दे।

मन्त्र सं. 34 – मांस का कोई भाग पृथ्वी पर न गिर जाये और न तृण आदि में लिपट जाये, सब देवताओं को प्राप्त हो ।

मन्त्र सं. 35 – जो अश्व को परिपक्व होता हुआ देखकर कहते है कि अच्छी सुगन्ध आ रही है अच्छा अब ले आओ. उससे हम प्रोत्साहित हों

मन्त्र सं. 36 – मांस पकाने वाली बटलोई को बार बार देखा जाना और जो अश्व को काटने की तलवार आदि है, वह सब अश्व को सुशोभित करते हैं ।

मन्त्र सं. 37 – इसमें कहा गया है कि हे अश्व! तुम्हें पकाते समय खद–खद की आवाज न आवे, तुम्हारे वषट्कृत मांस को देवता ग्रहण करें।

मन्त्र सं. 38 – हे अश्व! तुम्हारा निकलना, बैठना, जल पीना ,घास खाना, आदि सब देव को प्राप्त हो।

मन्त्र सं. 39 – अश्व को जो वस्त्र उढ़ाते हैं उसके सिर में जो बान्धते हैं उसके साथ जो स्वर्ण मोहरें बान्धते हैं, ये सब कर्म घोड़े का देवों को प्राप्त होने का साधन हैं।

मन्त्र सं. 40 – हे अश्व! घुड़ सवार ने सवारी के समय एड़ी या चाबुक से जो तुम्हें पीड़ा दी है उस सबको स्रुवा के द्वारा यज्ञों में हवि के समान मन्त्र के द्वारा दूर करता हूँ

मन्त्र सं. 41 – वेगवान् और देव प्रिय अश्व की चौंतीस वक्रियों को तलवार पार करती है। हे ऋत्विजों ! तुम एक एक अंग की घोषणा करके इसके अंग अंग को अच्छिद्र बनाओ और काटो ।

मन्त्र सं. 42 – इसमें कहा गया है कि हे अश्व! तुम्हारें जिन जिन अंगों को मैं, अध्वर्यु काटकर अलग करता हूँ, उन उन माँस पिण्डों को मैं अग्नि में होम कर देता हूँ , अपने काम में नहीं लाता हूँ।

मन्त्र सं. 43 – इसमें कहा गया है कि हे अश्व! स्वर्ग में जाते हुये तुम्हें तुम्हारा प्रिय शरीर तुम्हें दुखी न करे और यह तलवार तुम्हारे शरीर का कोई भाग न छोड़े, सभी अंगों को काटकर देवों को समर्पित कर दे।

मन्त्र सं. 44 – इसमें कहा गया है हे अश्व! काटे जाकर भी तुम न मरोगे न नष्ट होगे। यहाँ से तुम देवयान मार्ग से सीधे देवों को प्राप्त होगे । यही बात अध्याय सं. 23 के मन्त्र सं. 16 में कही गयी है

अध्याय सं. 28

इसके मन्त्र सं. 11 में मेद की आहुति देने का उल्लेख है मन्त्र सं. 23 तथा 46 में इन्द्र के लिये बकरे का मांस पकाने तथा भक्षण करने का उल्लेख है। यह भी कहा गया है कि अश्विनौ आदि देवों ने यजमान के द्वारा प्रदत्त पशुओं की मेद से प्रारम्भ करके सर्वांग तक का भक्षण किया और बचे हुये

शेष अवयवों का भी भक्षण किया ।उपरोक्त दोनों मन्त्र एक समान हैं।

अध्याय सं. 29

इसके मन्त्र संख्या 10, 20, 23, 24 तथा 35 में अश्व आदि का उल्लेख देवों की हवि अर्थात् ऐसे पशु जिनके माँस की आहुति दी जाय, के रूप में किया गया है।

अध्याय सं. 23

इसके मन्त्र सं. 16 में कहा गया है कि ' हे अश्व! जो तुम हमारे द्वारा काटे तथा मारे जा रहे हो, वह तुम न मरोगे न नष्ट होगे। तुम सुगम देवयान मार्ग से देवों को प्राप्त होगे।

इसके मन्त्र सं. 18 से 31 तक में उव्वट द्वारा किये गये अर्थों में अश्वमेध यज्ञ का अश्लील वर्णन है। (किन्तु यह कहना आवश्यक है कि इनमें मन्त्र सं. 19 **'गणानां त्वा गणपतिं'** का अर्थ स्पष्ट रूप से गलत है) इन मन्त्रों तथा उनके अर्थों की फोटो प्रतिलिपि आगे दी जा रही है।

यह भी उल्लेखनीय है कि इसी प्रकार के अर्थ शतपथ में भी दिये गये है, और शतपथ के 13/2/11/2 और 13/ 3 में कहा गया है कि अश्वमेध यज्ञ में वपा की आहुतियाँ दी जाती हैं।

इनमें से मन्त्र सं. 28 तथा 29 अथर्ववेद काण्ड 20 के कुन्ताप सूक्त , जो कि खिल सूक्त माना जाता है, में 20/136/1 तथा 20/136/4 के रूप में आये हैं, ।इस

अध्याय में अश्वमेध यज्ञ, जिसे सब लोग अत्यन्त श्रेष्ठ समझते हैं, का वर्णन अत्यन्त निन्दनीय एवं अश्लील है। स्वामी दयानन्द जी ने सन्यार्थप्रकाश मे लिखा है–

कि इसमे वर्णित निकृष्ट एवं अविश्वसनीय दुष्कर्म के फल स्वरूप गोरखपुर के एक राजा की रानी की मृत्यु हो गयी थी।

इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि नीचे दिये गये मन्त्रों के जो अर्थ उवट तथा महीधर द्वारा किये गये हैं, उनसे सर्वथा विपरीत अर्थ स्वामी दयानन्द जी तथा सातवलेकर जी द्वारा किये गये हैं किन्तु उनका उद्देश्य केवल अश्लीलता को छिपाना है जब कि शतपथ ब्राह्मण में उवट तथा महीधर के समान ही अर्थ दिये गये हैं। अतः उन्ही के द्वारा किये गये अर्थों की फोटों प्रतिलिपि आगे दी जा रही है।

अश्वमेध यज्ञ, अध्याय 23, मन्त्र सं. 18 से 31 ।

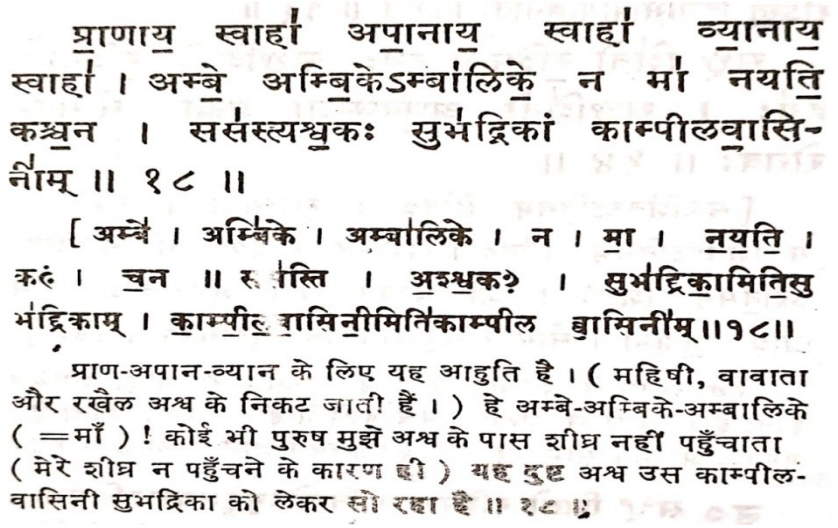

प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा । अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ १८ ॥

[अम्बे । अम्बिके । अम्बालिके । न । मा । नयति । कं । चन ॥ ससस्ति । अश्वक? । सुभद्रिकामितिसु भद्रिकाम् । काम्पील वासिनीमितिकाम्पील वासिनीम्॥१८॥

प्राण-अपान-व्यान के लिए यह आहुति है । (महिषी, वावाता और रखैल अश्व के निकट जाती हैं ।) हे अम्बे-अम्बिके-अम्बालिके (=माँ) ! कोई भी पुरुष मुझे अश्व के पास शीघ्र नहीं पहुँचाता (मेरे शीघ्र न पहुँचने के कारण ही) यह दुष्ट अश्व उस काम्पील-वासिनी सुभद्रिका को लेकर सो रहा है ॥ १८ ॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ-हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १९ ॥

(पत्नियाँ पहुँच कर अश्व की नौ प्रदक्षिणाएँ करती हैं ।) गणों में श्रेष्ठ तुझ गणपति को हम याचित करती हैं । प्रियों में प्रियपति हम तुम्हें याचित करती हैं । सुखनिधियों में श्रेष्ठ सुख के निधिपति तुम्हें हम याचित करती हैं । हे वसुरूप अश्व ! तुम्हीं हमारे पति होओ । (महिषी अश्व के पास लेटती है ।) हे अश्व ! गर्भधारक तुम्हारा तेज मैं खींच कर स्वयोनि में धारण करती हूँ । तुम उस गर्भधारक स्वतेज को खींच कर मेरी योनि में डालते हो ॥ १९ ॥

ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

हे अश्व ! आओ हम-तुम दोनों अपने चार पैर फैलावें । (अध्वर्यु—) हे अश्वमहिषी ! तुम दोनों इस स्वर्गीय यज्ञभूमि में स्वयं को चादर से ढँक लो । (महिषी घोड़े के लिङ्ग को खींचकर अपनी योनि घुसेड़ती है ।) वीर्यवान् अश्व, वीर्य को धारण कराने वाला मुझमें स्ववीर्य को धारण करे ॥ २० ॥

उत्सक्थ्या अवगुदं धेहि समञ्जि चारया वृषन् । यः स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥

(यजमान घोड़े से कहता है—) हे सेचक अश्व ! उठी जंघाओं वाली इस महिषी की योनि में अपना लिङ्ग डालो—उसे आगे-पीछे चलाओ । यह लिङ्ग ही स्त्रियों का जीवन और भोजन है ॥ २१ ॥

यकाऽसकौ शकुन्तिकाऽऽहलगिति वञ्चति । आ-हन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ २२ ॥

(कुमारी कन्या से अध्वर्यु चूत की ओर अंगुली दिखाकर—) यह (चूत) कौन-सी छोटी फुदकी 'आहलग्' शब्द कर रही है ? जब भग में शिश्न को मारते (=धक्के लगाते) हैं, तब योनि लिङ्ग को मानो निगल लेती है ॥ २२ ॥

यकोऽसकौ शकुन्तक आहलगिति वञ्चति । विवक्षत इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥ २३ ॥

(कुमारी शिश्न की ओर अंगुली दिखाकर—) हे अध्वर्यो ! यह कौन-सा पक्षि तेरे आगे 'आहलग्' शब्द करता हुआ रेंग रहा है ? यह तो कुछ कहता हुआ तेरा मुख-सा लगता है । अध्वर्यो ! आगे कुछ मत कहो ॥ २३ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य रोहतः ।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत् ॥ २४ ॥

(ब्रह्मा महिषी से कहता है—) हे महिषि ! तुम्हारी माता और तुम्हारा पिता जब खाट पर चढ़ते हैं । 'मैं स्नेहित करता हूँ' —ऐसा कहकर तेरा पिता मुठ्ठी से शिश्न को भग में घुसेड़ता है । (—उसी से तू पैदा हुई है) ॥ २४ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः ।
विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥ २५ ॥

(महिषी—) हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे भी माता-पिता जब खाट पर रति-क्रीडा करते हैं..... । कुछ और कहने की इच्छा कर रहा है तुम्हारा मुख । हे ब्रह्मन् ! तुम अधिक कुछ मत कहो ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्यै मध्यमेधताꣳशीते वातें पुनन्निव ॥ २६ ॥

(उद्गाता वावाता के प्रति—) अरे भाई ! इस वावाता को जरा ऊपर तो उठाओ—जैसे भार को वहन करते हुए (थकने पर) जरा ऊपर उठाते हैं। तब इसका मध्य योनिभाग फूल उठेगा, जैसे शीत वायु में अनाज उसाते समय कृषक अनाज से भरी डलिया को ऊपर उठाता है ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रपयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव।। २७।।

(वावाता उद्गाता के प्रति—) अरे भाई ! कोई इस उद्गाता को जरा ऊपर उठाओ, जैसे पर्वत पर भार वहन करते हुए थक कर उसे जरा ऊपर उठाते हैं। तब इस मध्यलिंगभाग का कम्पन करे, जैसे शीत वायु में अनाज उसाते हुए कृषक का हाथ कम्पन करता है ॥ २७ ॥

यदस्या अꣳहुभेद्याः कुधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥

(होता परिवृक्ता के प्रति—) जब छोटी योनि वाली के भग में छोटा-मोटा लिंग घुसता है, तब अण्डकोष इसकी चूत के ऊपर ही कम्पन करते रह जाते हैं, जैसे गाय के पैर में भरे हुए जल में दो मत्स्य गति करें ॥ २८ ॥

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः । सक्था देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ २९ ॥

(परिवृक्ता होता के प्रति—) जब यह देवजन प्रकर्ष से श्लेष्मास्रावी लिंग को भग में प्रविष्ट करते हैं, तब मात्र जंघास्थियों से नारी कही जाती है (—अन्यथा उसके सर्वांश का लोप हो जाता है, क्योंकि सुरतिरत पुरुष नारी को सर्वांशतः छाप लेता है ।), जैसे कि आँख से देखे सत्य का विश्वास । (यदि कोई यह कहे कि यह ब्राह्मण तो साक्षात् देवता हैं—विद्वान् हैं । यह डरते-डरते साधारण रति करते होंगे । वह भी किसी आसन आदि के साथ नहीं । तो यह 'कान की सुनी' के समान असत्य-प्राय है । 'आँख की देखी' के समान सत्य यही है कि ऊपर के यह देवता भोगकाल में नारी की जान ले लेते हैं) ॥ २९ ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

(क्षत्ता पालागली के प्रति—) जब किसी किसान के हरे-भरे खेत में घुसकर कोई हिरन उसके खेत को चरता है, तो किसान यह नहीं स्वीकार करता कि हरे-भरे धान्यों को चरकर पशु मोटा हो गया होगा । वह तो यही जानकर दुःखी होता है कि उसका खेत चर लिया गया । इसी प्रकार जब कोई शूद्रा किसी धनी की रखैल बन जाती है, तब उसका पति यह नहीं समझता कि अब उसके घर में प्रभूत धन आएगा । वह तो यही जानता है कि उसकी स्त्री व्यभिचारिणी हो गई ॥ ३० ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते। शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनुमन्यते ॥ ३१ ॥

(पालागली क्षत्ता के प्रति—) जब हरिण अनाज खाता है, तब 'पशु पुष्ट हो गया, क्या प्रसन्नता की बात है'—किसान ऐसा नहीं मानता। जब शूद्र किसी धनी की स्त्री का जार बन जाता है, तब वैश्य भी इसे अपनी पुष्टि नहीं स्वीकार नहीं करता। बल्कि वह क्लेशित ही होता है ॥ ३१ ॥

अध्याय सं. 35 :

मन्त्र संख्या 20

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके। मेदसः कुल्या उप तान्त्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषःसं नमन्ता ॐ स्वाहा।। 35।20

हे जातवेद अग्ने! पितरों के लिये तुम वपा (चर्बी) का वहन करो। उन पितरों के लिये मेद की लघु सरितायें बहें और हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त हो।

उल्लेखनीय है कि इस मन्त्र को पढ़कर गौ की वपा से होम करने का विधान पारस्कर गृह्य सूत्र की तृतीय कण्डिका 3।3।9 में किया गया है।

वेद में इन मन्त्रों को मिलाने वाल दुष्टों की नीचता एवं विकृत मानसिकता इस वाक्य से कि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' अर्थात् यज्ञों में की जाने वाली पशुवध

रूपी हिंसा, हिंसा नहीं होती, तथा मनुस्मृति में मिलाये गये निम्नांकित श्लोको में दिखायी देती है।

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया।

यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये।।

मनुस्मृति ५। २ ७

(प्रोक्षितं मांसं भक्षयेत्) यज्ञ के मन्त्रों से पवित्र किये गये मांस का भक्षण करना चाहिये, (ब्राह्मणानां च काम्यया) तथा बाह्मणों को इच्छानुसार मांस खाना चाहिये,। (यथाविधि नियुक्तः) शास्त्र में निर्दिष्ट विधि के अनुसार मांस खाना चाहिये तथा प्राणों की रक्षा के लिये भी मांस खाना चाहिये। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणों के लिये यह छूट है कि वह अपनी इच्छानुसार जब चाहें तब मांस खायें।

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।

यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः।।

मनुस्मृति ५।३९

ब्रह्मा जी ने स्वयं ही पशुओं को यज्ञ के लिये उत्पन्न किया है। अतः यज्ञ में किया गया पशुवध, वध नहीं होता।

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे।

अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्वभौ।।

मनुस्मृति ५।४४

(अस्मिन् चराचरे या वेदविहिता हिंसा नियता) इस संसार में जो वेदविहित हिंसा है, (अहिंसा एव तां विद्याद्) उसे अहिंसा ही

समझना चाहिये (हि धर्मः वेदाद् निर्वभौ) क्योंकि धर्म का स्रोत वेद ही है।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।।

मनुस्मृति ५।५६

(मांस भक्षणे दोषः न) न मांस भक्षण में दोष है , (न मद्य न च मैथुने) न मद्य में और न मैथुन में, (एषा प्रवृत्तिः भूतानां) क्योंकि यह तो मनुष्यों का स्वभाव ही है (तु निवृत्तिः महाफला) किन्तु इनका परित्याग अत्यन्त फलदायी है।

इसी प्रकार वाम मार्गियों द्वारा कहा गया है –

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।

एते पंच मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे।।

महा निर्वाण तन्त्र **कालीतन्त्र**

मद्य, मांस, मीन अर्थात् मछली, योनि पात्राधार मुद्रा और मैथुन अर्थात् पुरुष स्त्री का समागम ये पाँच मकार प्रत्येक युग में मोक्ष दायक हैं।

अर्थात् पुरुष स्त्री का समागम ये पाँच मकार प्रत्येक युग में मोक्ष दायक हैं।

दुर्भाग्य है कि हम लोग बुराइयों को हटाने के बजाय उन्हें छिपाने का प्रयास करते हैं अथवा उनके प्रति मौन सहमति रखते है। इसीलिये सतीप्रथा, बाल विवाह, छुआ छूत आदि कुप्रथायें सैकड़ों वर्षों तक चलती रहीं। इसका एक उदाहरण है कि आजकल भी सकट के अवसर पर अनक घरों में तिल का बकरा बनाकर काटा जाता है।

महत्वपूर्ण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, श्री कात्यायन मुनि ने अपनी यजुर्वेद सव्रानक्रमणी के प्रारम्भ मे ही लिखा है–

'माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुक्रिय ऋषिदैवतछन्दाꣳस्यानुक्रमिष्यामः।

अर्थात् माध्यन्दिन वाजसनेयि संहिता के खिल एवं शुक्रिय मन्त्रों सहित सभी मन्त्रों के ऋषि देवता तथा छन्दों की अनुक्रमणी बनाता हूँ। **साथ ही यह भी लिखा है कि यजुर्वेद के अध्याय 19 के 12 वें मन्त्र से लेकर 20 मन्त्र, चौबीसवें अध्याय के सभी 40 मन्त्र, 25वें अध्याय के पहले 9 मन्त्र और तीसवें अध्याय के पाँचवें मन्त्र से लेकर अन्त तक 18 मन्त्र, इस प्रकार कुल 87 मन्त्र ब्राह्मण भाग हैं।**

मुनि शौनक द्वारा प्रोक्त चरण व्यूह में मन्त्रों की संख्या के विषय में कहा गया है –

'द्वे सहस्रे शते न्यूनं मन्त्रे वाजसनेयके' वाजसनेय संहिता में दो हजार से सौ कम अर्थात् उन्नीस सौ मन्त्र हैं।

श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य के अनुसार भी यजुर्वेद की मन्त्र संख्या 1900 ही है, जब कि इस समय यजुर्वेद में 1975 हैं। काशी से श्री दौलतराम गौड़ द्वारा प्रकाशित यजुर्वेद संहिता की भूमिका में भी मन्त्रो की संख्या उन्नीस सा लिखी गयी है जब कि इस संहिता मे भी उन्नीस सौ पचहत्तर मन्त्र दिये गये हैं

इस प्रकार स्पष्ट है कि शुक्ल यजुर्वेद में 75 मन्त्र बाद में मिलाये गये हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार हैं।

अध्याय	मन्त्र की क्रम संख्या	योग	विवरण
6 –	7 से 11, तथा 13 से 22	15	गाय, बैल के वध से सम्बन्धित
19 –	32,33,35,36	4	सुरा पान से सम्बन्धित
21 –	29 से 40	12	मदिरा से आहुति दिया जाना
21 –	41 से 47 तथा 59,60	9	मेद–मांस की आहुति दिया जाना
22 –	7,8	2	अश्व के मूत्र आदि के लिये स्वाहा
23 –	18, 20 से 29	11	अश्वमेध के अश्लील मन्त्र
23 –	37, 40 से 42	4	अश्व को सुइयों से छेदना तथा काटना
25 –	32 से 45	14	अश्व का मांस पकाना आदि
28 –	11 ,23, 46	3	बकरे के मांस से सम्बन्धित
35 –	20	1	पितरों के लिये मेद की सरितायें होना

योग = 75

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, महाभारत में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि यज्ञों में मांस मदिरा से आहुति आदि देने की

प्रथा धूर्तों द्वारा प्रारम्भ की गयी है, वेदों में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

वेदों की निन्दा करने वाले चारवाक ने भी कहा है, **'मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम'**, – अर्थात् वेदों में मांसाहार निशाचरों का मिलाया हुआ है।

मनुस्मृति में लिखा है कि **'यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्'**– मद्य,मांस आदि राक्षसों के ही पेय एवं खाद्य पदार्थ हैं।

अतः पशुवध, मांस,–मदिरा आदि से आहुति देने, उनका भक्षण करने तथा अश्लीलता से सम्बन्धित उक्त 75 निकृष्ट फर्ज़ी मन्त्रों तथा ब्राह्मण भाग के 87 मन्त्रों – (इस प्रकार कुल 162 मन्त्रों) को माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद से निकाला जाना अत्यन्त आवश्यक

है। इन्हें निकालने के बाद ही यजुर्वेद को अपौरुषेय तथा ईश्वरीय वाणी कहा जा सकेगा और तभी वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति की रक्षा हो सकेगी।

यदि किसी कारण वश इन मन्त्रों को तुरन्त हटाया जाना सम्भव न हो तो महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान तथा महर्षि सान्दीपनि वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित वेद विद्यालयों में इन मन्त्रों को पढ़ाया जाना तो अविलम्ब बन्द

कर दिया जाना चाहिये ताकि वेद विद्यार्थियों को केवल विशुद्ध शुक्ल यजुर्वेद संहिता को ही कण्ठस्थ करना पड़े।

आगे कतिपय मन्त्रों का विवरण इस लिये प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि सभी सज्जनों, विशेष रूप से युवा वर्ग को यह जानकरी प्राप्त हो सके कि वेदों में यज्ञ, गौ, पर्यावरण की सुरक्षा, श्रेष्ठ

सामाजिक व्यवस्था, सत्य, सदाचार, अहिंसा एवं निश्पाप जीवन का कितना महत्व ह और वेद के अनुसार मनुष्य का जीवन कैसा होना चाहिए तथा उसका क्या उद्देश्य है।

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳ सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ।।

यजुर्वेद 1।1

इस मन्त्र में स्वास्थ्यप्रद अन्न तथा शुद्ध जल और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए निम्नांकित महत्व पूर्ण निर्देश दिए गये हैं।

1– पर्यावरण की रक्षा के लिए श्रेष्ठतम कर्म करना।

2– समाज की ऐसी व्यवस्था करना जिसमें चोर हमारे ऊपर शासन न कर सकें।
3– हमारे समाज में पाप कर्मों की प्रशंसा करने वाला कोई न हो।
4– अघ्न्या (अ= नहीं+ घ्न= मारना) अर्थात हमारी गायें जिन्हे मारा नही जाता, यक्ष्मा आदि रोगों से मुक्त रहें।

अघ्न्या न हनन् योग्या (जो मारे जाने योग्य नही है।)

अघ्न्या अहन्तव्या भवति। निरुक्त 1/164/40

5– गायों की रक्षा करने वाले यजमान अर्थात यज्ञ कराने वाले के पास बहुत सी गायें तथा बैल आदि पशु सुरक्षित होकर रहें।

इस मन्त्र का अर्थ बताते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है–
'यज्ञौ वै श्रेष्ठतमम् कर्म' यज्ञ ही श्रेष्ठतम् कर्म है।

इस अत्यन्त महत्वपूर्ण मन्त्र में यह भी कहा गया है कि हमे अपने समाज की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए **'मावस्तेन ईशत'** कि चोर हमारे ऊपर शासन न कर सकें और **'माघंशंसः'** हमारे समाज मे पाप की प्रशंसा करने वाला कोई न हो।

इसी मन्त्र में गाय को **(अघ्न्या) अर्थात् जिये मारा नही जाना चाहिए,** कहा गया है और निर्देश दिया गया है कि यज्ञ करने वाले यजमान के पास बहुत सी गायें तथा अन्य पशु सुरक्षित रहें।

यह उल्लेखनीय है कि यज्ञ के प्रारम्भ मे अग्न्याधान करने अर्थात् समिधाओं के मध्य अग्नि रखने के निम्नांकित मन्त्र स्पष्ट रूप से कहा गया है –

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे।
यजुर्वेद 3/5

जिस पृथिवी में देवताओं के लिये यज्ञ किया जाता है उसके पृष्ठ पर **(अन्नादम्**)अर्थात् यज्ञ मे अन्न का भक्षण करने वाले अग्नि को **(अन्नादाय)** अर्थात् आहुति के रूप मे दिये हुये अन्न का भक्षण करने के लिये स्थापित करता हूँ। इससे सिद्ध हो जाता है, कि वेद के अनुसार मेद, माँस, मदिरा की आहुतियाँ यज्ञ मे नहीं दी जा सकती, केवल अन्न तथा सोम, दूध, आदि पवित्र वस्तुओं की ही आहुति दी जा सकती है।

यजुर्वेद के दूसरे मन्त्र में कहा गया है **'मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्'** यज्ञ करने वाला यजमान कुटिल न हो, धूर्त और मक्कार न हो। इससे स्पष्ट है कि केवल सदाचारी व्यक्ति ही यज्ञ करने का अधिकारी होता है, गाय, बैल को काटकर खाने वाला और शराब पीने वाला नहीं।

यजुर्वेद के तीसरे मन्त्र में यज्ञ की पवित्रता का वर्णन दर्शनीय है–

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्।
देवस्त्वासवितापुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।

यजुर्वेद 1/3

हे यज्ञ! तुम सैकड़ों प्रकार से, सैकड़ों धाराओं से पवित्र हो, तुम हज़ारो धाराओं से हज़ारो प्रकार से पवित्र हो, सविता देव तुम्हें सैकड़ों धाराओं से पवित्र करें।

यजुर्वेद के दूसरे अध्याय के 13 वें मन्त्र में कहा गया है –

मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमम् दधातु। विश्वे देवास इहे मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ।।

यजुर्वेद 2/13

मेरा वेगवान मन यज्ञ में आहुति दिये जाने वाले घृत मे लगे अर्थात् यज्ञ करने मे लगे, बृहस्पति इस हिंसा रहित यज्ञ का विस्तार करें, और सम्यक् रूप से धारण करें। समस्त देवता तथा विद्वान् इस यज्ञ मे आनन्द प्राप्त करें और ब्रह्म स्वयं यहाँ प्रतिष्ठित होने की कृपा करें।

यही बात गीता में निम्न प्रकार कही गयी है –

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं।

तस्मात् सर्व गतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

गीता 3/15

यज्ञ कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जानो, वेद परमात्मा से उत्पन्न हुये है, अतएव सर्वव्यापक ब्रह्म सदा यज्ञ मे प्रतिष्ठित रहता है।

वैदिक धर्म में यज्ञ का अत्यंत महत्व है।

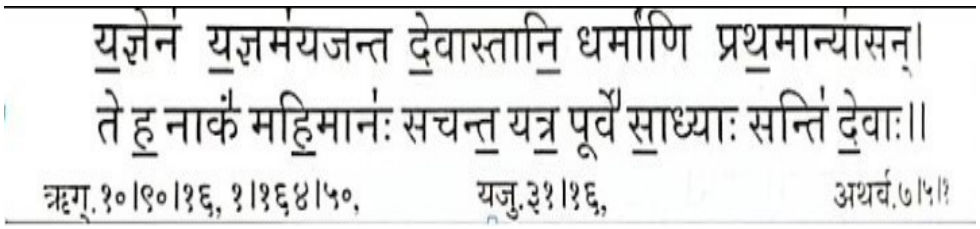

देवों नें, विद्वानों ने यज्ञ के द्वारा पूजनीय परमात्मा का यजन किया। विविध प्रकार के यज्ञ ही प्रमुख अर्थात सर्वश्रेष्ठ धर्मिक

कार्य थे जिनके द्वारा यज्ञ करने वाले सदाचारी विद्वान, महिमा से युक्त होकर पूर्व में हुए ऋषियों के समान स्वर्ग अथवा आनन्द से परिपूर्ण परम धाम को प्राप्त होते हैं।

यज्ञ की पवित्रता

यज्ञ शब्द का अर्थ है, देव पूजन, दान एवं संगति करण अर्थात, देवताओं का पूजन, दान देना और श्रेष्ठ लोगो का सत्संग करना। इसी लिए ऋग्वेद में कहा गया है –

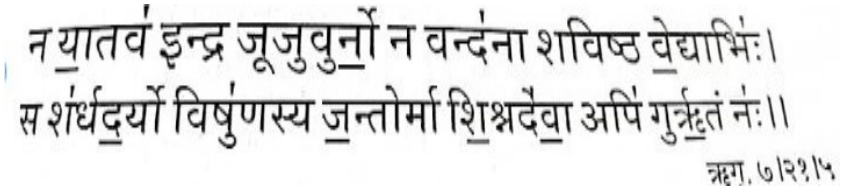
न यातवं इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः॥

ऋग. ७।२१।५

कोई बिघ्नकारी राक्षस, दिखावटी वन्दना करने वाले लोग, तथा शिश्न ही है देवता जिनका, अर्थात्, काम वासना में लिप्त दुराचारी लोग हमारे यज्ञ में न आयँ, केवल श्रेष्ठ संयमी सज्जन ही आयँ।

विचारणीय है कि क्या यज्ञ की पवित्रता एवं श्रेष्ठता का इस प्रकार वर्णन करने वाले यजुर्वेद मे यज्ञ को अपवित्र करने वाले मन्त्र हो सकते हैं ?

वेदों में यज्ञ को अध्वर (अ=नही, ध्वर=हिंसा) अर्थात्, जिसमें हिंसा न हो, कहा गया है।

अध्वर इति यज्ञनाम, ध्वरति हिंसा कर्म तत्प्रतिषेधः।

निघण्टु पठित 'ध्वृ' धातु हिंसार्थक है, अध्वर में इसका प्रतिषेध है।

यज्ञ में पशु हिंसा किये जाने की संभावन ही नहीं हो सकती।

गौ

गौ को वेदों में अत्यधिक सम्मान दिया गया है। वेदों में गाय की प्रशंसा करने वाले बहुत से मन्त्र हैं।

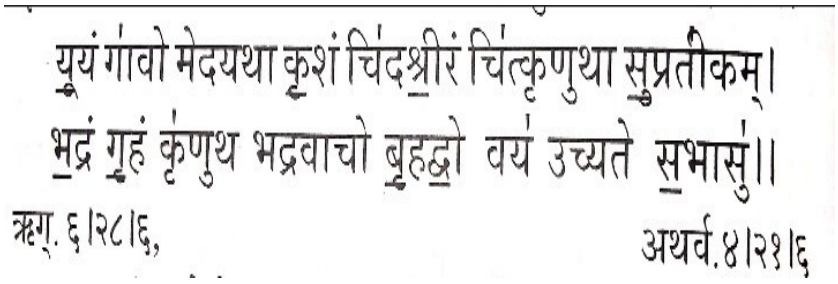
युयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु।।
ऋग्. ६।२८।६, अथर्व.४।२१।६

इस मन्त्र में गौ को (भद्र वाचः) कल्याण कारी वाणी वाली, गृह को सुखी करने वाली, दुर्बलों को पुष्ट बनाने वाली तथा श्री हीन व्यक्तियों को शोभा युक्त बनाने वाली कहा गया है।

ऋगवेद के निम्नांकित मन्त्र में गौ को रुद्र देवों की माता, वसु देवों की पुत्री, आदित्य देवों की बहन तथा (अमृतस्य नभिः) अर्थात अमृत का केन्द्र विन्दु कहा गया है और **'मा वधिष्ट'** कहकर उसका वध न करने का निर्देश दिया गया है।

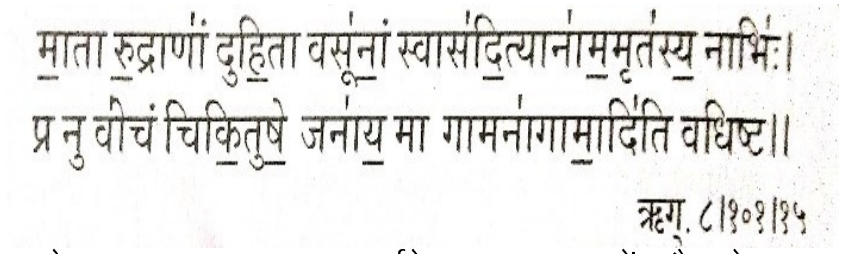
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वासादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।।
ऋग्. ८।१०१।१५

ऋग्वेद 6/28/5 तथा अथर्ववेद 4/21/5 में गौ को साक्षात इन्द्र कहा गया है। यजुर्वेद 13/43/ में **गां मा हिंसीः** कहकर गाय के साथ किसी प्रकार की हिंसा न करने का आदेश दिया गया है।

महाभारत में गौ को सब प्राणियों की माँ तथा सब सुख देने

वाली कहा गया है।

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।

महाभारत अनुशासन पर्व, 69। 7

इसलिये गाय, बैल, अश्व, भेड़, बकरे आदि निरपराध पशुओं के वध तथा उनके मांस तथा चर्बी और मदिरा से आहुति दिये जाने की बात वैदिक धर्म के सर्वथा विपरीत है। किसी भी वास्तविक वेद मन्त्र में इस प्रकार का निकृष्ट कथन नही किया गया है।

महाभारत में सभी प्राणियों को अभय दान देना सर्वोत्तम धर्म कहा गया है –

आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयीधर्मः सदाफलः।
मनो यस्य न शोचन्ति सद्भिः सन्धिर्न जीर्यते ।।

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. २९७।५५

सब भूतों को अभय देना सबसे उत्तम धर्म है, वेदोक्त धर्म सदा फल देने वाला है, मन को रोकने पर शोक नहीं होता तथा सज्जनों की सन्धि अर्थात मित्रता कभी नहीं टूटती।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' के हमारे आदर्श में मनुष्यों के साथ समस्त प्राणी भी सम्मिलित हैं।

यह महत्वपूर्ण है कि निम्नाकिंत पाँच यमों, जिनका पालन करना हमारे धर्म का आधार है, में अहिसां सर्व प्रथम है।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

योगदर्शन 2।30

गीता में कहा गया है।

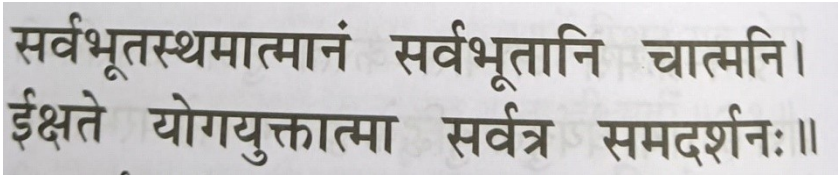

गीता–6 / 29

परमात्मा सभी प्रणियों में स्थित है और सब प्राणी परमात्मा में स्थित हैं। अतः स्पष्ट है कि जो सब प्रणियों के कल्याण के लिये कार्य करता है **सर्व भूत हिते रतः** है वही स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है, प्रणियों को मारने काटने वाला नहीं।

यजुर्वेद का स्पष्ट आदेश है

'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।

यजुर्वेद 9 / 23

हमें स्वयं जागृत होकर और आगे बढ़कर राष्ट्र को जागृत करना चाहिये ताकि अपनी व्यक्तिगत तथा समाज की समस्त बुराइयों को दूर किया जा सके।

वेद का प्रसिद्ध मन्त्र है

भद्रं कर्णेभिः श्रणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

यजुर्वेद 25 / 21

हम कानों से कल्याणकारी बातें सुनें और नेत्रों से कल्याणकारी वस्तुयें देखें।

तब इन मन्त्रों में कही गयी घृणित बातों को पढ़ना और विद्यार्थियों को पढ़ाना कैसे उचित कहा जा सकता है।

विदुरनीति 2/38 में कहा गया है –**'ब्राह्मणा वेद बान्धवाः** ब्राह्मण वेदों के भाई हैं।

इस लिए सभी ब्राह्मणों और विद्वानों का यह परम कर्तव्य है कि वेदों को कलंकित करने वाले इन मन्त्रो को तुरन्त हटवाने का अथक प्रयास करें।

वेद में प्राथना है–

'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे'

यजुर्वेद 22/22

हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्मतेज से युक्त हों।

माँस मदिरा का पान करने वाले और यज्ञों को पशु वध से कलंकित करने वाले पतित लोग, ब्रह्मवर्चसी होना तो दूर ब्राह्मण कहे जाने के भी योग्य नहीं हैं।

वेद में प्राथना ह–

'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'

यजुर्वेद 34/1 से 6 तक

हमारा मन शिवसंकल्प वाला हो।

विचारणीय है कि ऐसे घृणित कार्य करने वालों का मन शिव संकल्प वाला कैसे हो सकता है। उनका मन तो सदैव नीचता एवं कुटिलता से भरा रहेगा और दुराचार की ओर चलने वाला होगा।

वैदिक धर्म का आदर्श है–

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवं।

कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

तब कोई वैदिक धर्मावलम्बी निरपराध पशुओं का वध कैसे कर सकता है, और वह भी यज्ञ जैसे श्रेष्ठतम् कर्म में। वेद ऐसे निकृष्ट कार्य की अनुमति कैसे दे सकता है?

कतिपय विद्वानों का यह कथन कि 'मन्त्र गलत नहीं हैं, अर्थ गलत है' पूरी तरह असत्य एवं भ्रमक है, उदाहरणार्थ–

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराके।
मेदसः कुल्या उप तान्त्स्त्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सं नमन्ता ॐ स्वाहा।।

यजुर्वेद 35/20

हे जातवेद अग्नि, तुम वपा को पितरों के पास ले जाओ, वहाँ वपा की धारायें बहने लगें और पितर प्रसन्न होकर हमें आशीर्वाद दें।

इस मन्त्र के आधार पर पारस्कर गृह्य सूत्र में कहा गया है –

तस्यै वपां जुहोति–वह वपां जातवेदः पितृभ्य इति।।3।3।9

अर्थात् उक्त मन्त्र को पढकर गौ की वपा (चर्बी) से होम करे।

क्या पारस्कर गृह्य सूत्र के रचनाकार इतने महान विद्वान् श्री पारस्कर जी को भी इस मन्त्र का सही अर्थ ज्ञात नहीं था ? स्पष्ट है कि मन्त्र ही फर्जी और मिलावटी हैं, अर्थ गलत नहीं हैं।

सभी विद्वान स्वीकार करेगें कि अश्वमेध यज्ञ से सम्बन्धित मन्त्र इतने अधिक अश्लील हैं कि इनका अर्थ बालकों तथा बालिकाओं को बताया भी नहीं जा सकता, तब इनकों वेद का भाग मानकर कण्ठस्थ करवाना और पढ़ाना कैसे उचित कहा जा सकता है ? वैदिक धर्म को समझने के लिये कृपया गायत्री मंत्र की प्रशंसा से संबन्धित निम्नांकित मन्त्र का अवलोकन करें

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।।

अथर्व वेद 19/71/

इच्छित वर देने वाली, बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाली और द्विजों को पवित्र करने वाली ज्ञान की माँ गायत्री की मेरे द्वारा स्तुति की गयी।

मन्त्र में प्रयुक्त '**द्विजानाम**' शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट है कि वेद माता अर्थात् ज्ञान की माँ गायत्री केवल सत्यवादी, सदाचारी तथा सुसंस्कृत लोगों को ही पवित्र करती है, पशुओं का वध करके उनके मेद–माँस और मदिरा से आहुति देनेवाले और इनका भक्षण करने वाले नीच दुराचारी लोगो को नहीं।

मन्त्र में आगे कहा गया है कि माँ गायत्री सत्य धर्म के मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ लोगों को दीर्घायु, प्राणशक्ति अर्थात् तेज एवं पराक्रम, उत्तम स्वाथ्य श्रेष्ठ सन्तान सुख दायक पशु, प्राणिमात्र की रक्षा एवं पुण्य कर्मों से प्राप्त होने वाला यश, प्रचुर मात्रा में धन और ब्रह्म तेज प्रदान करके अन्त में ब्रह्म लोक को ले जाती है।

वास्तव में वेद की यही विषय वस्तु है, यही वेद का उद्देश्य है, यही उनके उपदेशों और आदेशों का लक्ष्य है कि इस लोक में लोगों को सदाचारी बनाना और उनके जीवन को सब प्रकार से सुखी; सफल एवं समृद्ध बनाकर अन्त में जन्म मृत्यु के चक्र से

मुक्त करके परमात्मा के परम धाम को प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना।

इससे स्पष्ट है कि वेद का कोई मन्त्र मनुष्य को असत्य; अत्याचार; क्रूरता, हिंसा मदिरा पान तथा पशुवध जैसे निकृष्ट कर्मों की अनुमति नहीं दे सकता।

वेद में कहा गया है–

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धाम् अनृते दधात्श्रद्धाम् सत्ये प्रजापतिः।।

यजुर्वेद 19।77

प्रजापति नें सत्य में श्रद्धा को और (अनृत) अर्थात् असत्य में अश्रद्धा को रखा। अतः वेद के अनुसार हमें केवल सत्य मे श्रद्धा रखनी चाहिए, असत्य मे नही। अस्तु यह आवश्यक है कि यजुर्वेद जो हमारी श्रद्धा का श्रेष्ठतम केन्द्र बिन्दु है, से जन

जीवन पर विनाशकारी प्रभाव डालने वाले, सर्वथा असत्य एवं अनुचित, अधर्म तथा पाप को प्रोत्साहित करने वाले, मिलावटी मन्त्रों को **व्यापक जनहित में हटा दिया जाय** ताकि लगभग 2500 सौ वर्षों से चली आ रही गन्दगी से मुक्ति दिलाकर शुक्ल यजुर्वेद को वास्तव मे विशुद्ध, शुक्ल एवं पवित्र अपौरुषेय रूप मे प्रस्तुत किया जा सके।

इन मिलावटी मन्त्रों का विनाशकारी प्रभाव अन्य शास्त्रों पर भी दिखाई देता है। इसका एक उदाहरण पारस्कर गृह्य सूत्र से दिया जा चुका है, जिसमें यजुर्वेद के मन्त्र संख्या 35/20 को

पढकर गाय की चर्बी (वपा) से हवन करने का निर्देश दिया गया है।

इसी पारस्कर गृह्य सूत्र के तृतीय काण्ड की अष्टमी कण्डिका में स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से शूलगव नामक विशेष यज्ञ का उल्लेख किया गया है, जिसमे गाय तथा बकरे को काटकर उनकी वपा अर्थात् चर्बी और माँस पिण्डों से रुद्र के लिये होम करने का विधान किया गया है और इसे गो यज्ञ का नाम दिया गया है।

इसकी दशमी कण्डिका में मृत्यु के पश्चात् 11वें दिन **ब्राह्मणों** को गो माँस का भोजन कराने का उल्लेख किया गया है और ग्यारवीं कण्डिका मे पशुवध का तरीका बताया गया है।

इस गृह्यसूत्र के कात्यायन कृत परिशिष्ट के श्राद्धसूत्र में अनेक पशु पक्षियों के साथ साथ सुअरों का माँस भी ब्राह्मणों को खिलाने का उल्लेख किया गया है और भोजन सूत्र मे दैनिक भोजन में मँास खाने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार जिस शतपथ ब्राह्मण के 3/9/2/1 कहा गया है, **'अध्वरो वै यज्ञः'** अर्थात् यज्ञ हिंसा से रहित होता है और 1/1/1/1/मे कहा गया है, **'अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति,** अर्थात् असत्य बोलने वाला पुरुष अपवित्र होता है, यज्ञ करने के योग्य नहीं होता, उसी शतपथ मे आगे चलकर गाय, बैल, भेड़, बकरा आदि के वध करने और उनके मेद माँस तथा

मदिरा से आहुति देने तथा उनका भक्षण करने का निर्लज्जता पूर्ण उल्लेख है।

ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोगों के लिए सत्य और असत्य मे कोई अन्तर ही नहीं रह गया है और गत लगभग 2500 वर्षों से हमारा समाज पतन की निम्नतम सीमा तक गिर चुका है, जब कि वेद में कहा गया है–

सत्यं बृहद्दृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।

अथर्ववेद 12/1

यह पृथिवी बृहत् एवं उग्र सत्य, ऋत् अर्थात् भगवान के कठोर अटल नियमों पर आधारित है और हमारा समाज पूर्ण सत्य, दीक्षा, तप, ज्ञान, तथा ब्रह्म यज्ञ पर आधारित है।

इसी मन्त्र के आधार पर कहा गया है–

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।

सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

चाणक्य नीति 5/19

सत्य के द्वारा ही पृथ्वी को धारण किया गया है, सत्य से ही सूर्य तपता है, सत्य से ही वायु चलती है, सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित है। भगवान के सत्य एवं अपरिवर्तनीय नियमों से ही प्रकृति की सारी क्रियायें चलती हैं।

वास्तविकता यह है कि इन निकृष्ट मिलावटी 75 मन्त्रों तथा ब्राह्मण भाग के 87 मन्त्रों (कुल 162 मन्त्रों) को छोड़कर शेष शुक्ल यजुर्वेद संहिता ज्ञान एवं पवित्रता से भरी हुयी है।

ब्राह्मण भाग के मन्त्र

जिस पुस्तक में मन्त्रों के अर्थ बताये जाते हैं अथवा उनका विनयोग बताया जाता है, उसे ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं। उदाहरणार्थ, यजुर्वेद के पहले मन्त्र में कहा गया है कि सविता देव तुम्हें श्रेष्ठतम कर्म करने की प्रेरणा दें किन्तु यह नहीं बताया गया कि श्रेष्ठतम कर्म क्या है। इस लिये मन्त्र का अर्थ स्पष्ट करते हुये शतपथ ब्राह्मण जो कि यजुर्वेद का ब्राह्मण है, में बताया गया है कि, यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म, यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है।

मन्त्रों का प्रयोग जहाँ किया जाना चाहिये, उसे विनियोग कहते हैं। उदाहरणार्थ गायत्री मन्त्र के लिये कहा गया है **'जपे विनियोगः'** अर्थात् गायत्री मन्त्र का प्रयोग मुख्य रूप से जप में किया जाना चाहिये।

वेद मन्त्र वेद संहिता में होते है और ब्राह्मण भाग के मन्त्र ब्राह्मण में होते हैं किन्तु यजुर्वेद की सर्वानुक्रमणी के अनुसार ब्राह्मण भाग के सतासी मन्त्र शुक्ल यजुर्वेद की संहिता में शामिल है, जिन्हे संहिता में नही होना चाहिए।

इन मन्त्रो में उस समय के लोगों के व्यवसाय जैसे रथकार, हिरण्यकार, मणिकार, आदि और पशु जैसे सिंह, गर्दभ, सूकर, आदि तथा पक्षियों जैसे तोता, मोर, कपोत, ऊलूक, और जलचर, जैसे मकर, मेंढक, मछली, आदि का उल्लेख है। इस लिए इन

मन्त्रो को विद्यार्थियों द्वारा कंण्ठस्थ किये जाने का कोई औचित्य नहीं है।

अतः इन मन्त्रों को संहिता से हटा कर संहिता के अन्त में परिशिष्ट के रुप में रखा जाना चाहिए जैसे कि ऋग्वेद में खिल सूक्तों को परिशिष्ट में रखा गया है।

केवल मूर्खता, क्रूरता, हिंसा, दुराचार आदि आसुरी प्रवृत्तिओं की वृद्धि करने वाले और सभी दैवी गुणों को नष्ट करके समाज को पतन की ओर ले जाने वाले सत्य एवं वैदिक धर्म के विरुद्ध, वेदों को कलंकित करने वाले इन 75 मिलावटी मन्त्रों को हटाया जनहित में आवश्यक है।

अस्तु यह विनम्र प्रार्थना है कि इस महत्वपूर्ण विषय का ऐतिहासिक निर्णय सात्विक बुद्धि, तथा विवेक पूर्ण तर्क के आधार पर व्यापक जनहित में किया जाय, यथास्थिति बनाये रखे जाने वाले पूर्वाग्रह से युक्त पुरातन विचारों के आधार पर नहीं।

अन्त में अपनी आयु के 94वें वर्ष में सभी सज्जनों विशेष रूप से युवा वर्ग से मेरी यह प्रार्थना है कि अथक प्रयास एवं संघर्ष करके शुक्ल यजुर्वेद को पवित्र तथा अपौरुषेय रूप में प्रस्तुत करने का अक्षय पुण्य अर्जित करें।

अश्वमेध यज्ञ से सम्बन्धित 11 अश्लील मन्त्रों की अर्थ सहित फोटो प्रतिलिपि ऊपर दी जा चुकी है, शेष 64 फर्ज़ी मन्त्र एवं उनके उवट तथा महीधर द्वारा संस्कृत में किये गये भाष्य की सक्षिप्त हिन्दी व्याख्या की फोटो प्रतिलिपि भी पाठकों की सुविधा के लिये आगे दी जा रही है, यह अर्थ शतपथ ब्राह्मण के अनुसार हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आर्य समाज के विद्वानों तथा श्री सातवलेकर जी द्वारा किये गये भाष्यों में इन मन्त्रों का सही अर्थ जान बूझकर छिपाया गया है, जिसके फल स्वरूप किसी को यह पता ही नहीं चल पाता के शुक्ल यजुर्वेद में दुष्टों द्वारा मिलावट की गयी है जबकि महाभारत मे इसका स्पष्ट उल्लेख है।

वास्तविकता यह है कि शुक्ल यजुर्वेद के साथ साथ शतपथ ब्राह्मण एवं बृहदारण्यक उपनिषद् में भी मिलावट की गयी है जिसे हटाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

अध्याय सं. 6

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशोपागुरुशिजो वह्नितमान् देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥७॥

हे तृण विशेष ! तुम समीप से रक्षा करने वाले मित्र हो। (एक तृण के द्वारा पशु के स्पर्श करना। देवों की प्रजा पशु स्वर्ग प्रापक अग्नि सोम प्रभृति हविर्भाग देवों को सम्प्राप्त होवें। हे त्वष्टादेव ! तुम यजमान को धन दो। हे पशो ! तुम्हारे हविर्भूत मांसादि को देव आस्वादन करें ॥ ७ ॥

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि। ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

हे दुग्धादि धनवाली गायों ! तुम यजमान के घर में सुख से रहो। हे बृहस्पति ! तुम यजमान के घर में गवादि धनों के धारण करो। हे देवों पशुहविः पशो ! मैं तुम्हें यज्ञ के बन्धन से बांधता हूँ

(मन्त्र पढ़ कर पशु की सीगों के मध्य कुश की रस्सी को बांधना) अब शमिता तुम्हें स्ववश में करें।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ ९ ॥

हे पशो! सवितादेव की अनुज्ञा में वर्तमान मैं अश्विनौ की बाहुओं तथा पूषा के हाथों से अग्नि और सोम के प्रीतिकर तुमको यूप से संयोजित करता हूँ। (मंत्र पढ़ कर पशु को खम्भे से बांधना)। हे पशो! मैं तुम्हें जल एवं दर्भ प्रभृति ओषधियों से प्रोक्षण करता हूँ। (दर्भों से पशु पर जल छिड़कना)। हे पशो! देवों की हविः होने के निमित्त तुम्हारी माता तुम्हें अनुमोदित करे; तुम्हारा पिता तुम्हें अनुमोदित करे; तुम्हारा भाई तुम्हारा अनुमोदन करे और एक झुण्ड में उत्पन्न तुम्हारा मित्र भी तुम्हें अनुमोदित करे। हे पशो! मैं अग्नि और सोम के प्रीतिकर तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ।

अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सदेवहविः। सं ते प्राणो वातेन गच्छताꣳ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥ १० ॥

हे पशो ! तुम जलों को पीने वाले हो । (पशु के निम्न उदरादि भाग को प्रोक्षण करना)। हे पशो ! तुम्हें आपो देवी आस्वाद्य (= पवित्र) बनावें—क्योंकि पवित्रीकृत हो स्वादिष्ट पशु मांस ही देवहविः होता है । (मंत्र पढ़कर पशु के ऊपर सर्वत्र जल छिड़कना) । हे पशो ! तुम्हारा प्राण बाह्य प्राण से संगत होवे और तुम्हारे विविध अंग-प्रत्यङ्ग यथाविधान उस-उस यजनीय देव से संगत होवें और यह यज्ञ का स्वामी यजमान अभीष्ट स्वर्गादि आशी से संगत होवे ॥ १० ॥

घृतेनाक्तौ पशूꣳस्त्रायेथाꣳरेवति यजमाने प्रियं धा आविश । उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव । वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

(पशु को मारने के लिए नियुक्त शमिता व्यक्ति के हाथ से मारने की असि तथा स्वरु को हाथ में लेकर और उन दोनों को घृत से आलिप्त करके—) हे असे—स्वरो ! घृत से आप्लुत तुम दोनों इस वध्य पशु की रक्षा करो । हे धन की कामना से युक्त स्तुति वाणी ! तुम यजमान में प्रिय धनादि धारित करो । तुम इस

यजमान में प्रवेश करो। हे स्तुते! वायुदेव के साथ सम्प्रीति को प्राप्त होकर तुम इस वध्य पशु की विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में विद्यमान राक्षसादि से रक्षा करो। तुम स्वयं ही इस पशुहवि के द्वारा देवों का यजन करो और इस वध्य पशु के शरीर के साथ एक रूप होओ। हे वर्षा से उत्पन्न तृण! तुम इस यज्ञ के स्वामी यजमान को फलयुक्त यज्ञ में निहित करो! (मंत्र पढ़कर पशु के नीचे भूमि पर तृण रखना)! देवों के लिए यह पशुहवि है—देवों के लिए यह पशुहविः है॥ ११॥

देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म॥ १३॥

हे हाथ-पैर धोने के घट में सुष्ठु स्थित द्योतमान जलों! शुद्ध तुम इस पशु को शुद्धि के द्वारा देवों में प्राप्त कराने के समर्थ होओ। देवों के मध्य स्थित हम भी उन देवी के द्वारा सर्वतः परिवेष्टित होवें॥ १३॥

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राꣳस्ते शुन्धामि॥ १४॥

(मृत पशु के निकट बैठकर यजमान की पत्नी) हे पशो ! मैं तुम्हारी जिह्वाको शुद्ध करता हूँ (—जल से मुखको स्पर्श करना)। हे पशो ! मैं तुम्हारे प्राण को शुद्ध करती हूँ (नासिकारन्ध्रों को स्पर्श करना)! हे पशो ! मैं तुम्हारी आंखों को शुद्ध करती हूँ (चक्षुओं को स्पर्श करना)। हे पशो ! मैं तुम्हारे कानों को पवित्र करती हूँ (कानों को स्पर्श करना)। हे पशो ! मैं तुम्हारी नाभिको पवित्र करती हूँ (नाभि को स्पर्श करना)। हे पशो ! मैं तुम्हारे शिश्नको शुद्ध करती हूँ (पशु के लिङ्ग को स्पर्श करना) हे पशो ! मैं तुम्हारी गुदा को शुद्ध करती हूँ (गुदा को स्पर्श करना)। हे पशो ! मैं तुम्हारे चरणों को शुद्ध करती हूँ (मंत्र पढ़कर जल से पशु के चारों पैरों को स्पर्श करना) ॥ १४ ॥

मनस्त आप्यायतां वाक् आप्यायतां प्राणस्त आप्यायतां चक्षुस्त आप्यायताꣳश्रोत्रं त आप्यायताम्। यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ १५ ॥

(हाथ-पैर धोने के जल से यजमान तथा अध्वर्यु, यजमान की पत्नी के पश्चात्, पशु को शुद्ध करें। घटशेष जल को पशु पर छिड़कते हुए यजमान—) हे पशो ! तुम्हारा मन आप्यायित (= बढ़ा हुआ = प्रफुल्ल) होवे । तुम्हारी जिह्वा प्रसन्न होवे। तुम्हारा प्राण प्रफुल्ल होवे । तुम्हारी चक्षुरिन्द्रिय आप्यायित होवे। तुम्हारी श्रवण शक्ति परिवर्धित होवे। हे पशो ! बन्धनादि जो तुम्हारे संग क्रूरता आचरित है और वधादि जो कृत्य विहित किया गया है—वह सब तुम्हे विगतखेद बनावे । तुम्हारा विशृङ्खलित अंगप्रत्यङ्गादि संहत होवे । तुम्हारा वह होमीय सर्वाङ्ग, हे पशो ! शुद्ध होवे। दिन-रात्रि प्रभृति सर्वकाल के लिए, हे पशो ! तुम्हारे निमित्त कल्याण होवे। (शेष जल को पशु पर छिड़कना)। (तीन दर्भों को पशु की छाती पर रखना)—हे ओषधे ! इस पशु की रक्षा करो। (हाथ में तलवार लेकर) अहो ! तुम इस पशु की आत्मा को दुःखित मत करना। (मंत्र पढ़ कर पशु को छाती की त्वचा को उधेड़ना) ॥ १५ ॥

रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्षऽइदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवबाध इदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णु-वाथां वायो वेस्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥ १६ ॥

होमीय पशु की त्वचा की उधेड़ने के पूर्व जो दर्भतृण पशु की छाती पर रक्खा गया था और तलवार से पशु की त्वचा काटते हुए जिसके दो भाग हो गये थे। उन दो भागों में से अग्रभाग को बाएँ हाथ में तथा मूलभाग को दाहिने हाथ में लेकर अध्वर्यु उन दोनों तृणों को पशु के खून में भिगोवे । अध्वर्यु—) हे रक्तरंजित तृण ! तुम राक्षसों का भाग हो। (मंत्र पढ़ कर दोनों तृणों को मिट्टी के ढेर पर फेंक देवे)। यह राक्षसवर्ग यज्ञस्थान से निःसृत किया गया । (यजमान—) यह मैं राक्षसवर्ग को पदाक्रान्त करता हूँ। (तृणों पर पैर धरना) यह मैं राक्षसवर्ग को अवबान्धित (= पीड़ित) करता हूँ। (तृणों को पैर से दबाना) । यह मैं राक्षसवर्ग को अत्यन्त अन्धकारपूर्ण (रसातल में ले जाता हूँ । पशु के उदर से निकाली गई मेद को मेद निकालने वाली दोनों लकड़ियों में आलिप्त करे। अध्वर्यु—) हे द्यावापृथिवी ! तुम दोनों स्वयं को जल से प्राच्छादित करो। हे वायो ! तुम वसा के बिन्दुओं को जानो । आहवनीयाग्नि घृताहुति को जाने। अग्नि के लिए यह आहुति है। तृणविशेषों को उठाकर आहवनीयाग्नि से होम कर दे । (चर्बी निकालने की दोनों लकड़ियों को भी आहवनीयाग्नि में होम करते हुए अध्वर्यु—) हे वपाश्रपणी (= दोनों लकड़ियों) ! अग्नि में आहुत तुम दोनों ऊर्ध्व अन्तरिक्ष में विद्यमान पवन को सम्प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

(ऋत्विज-यजमानादि सब चात्वाल के निकट अपने को पवित्र करते हैं)। यह जल वहां ले जावें जो कुछ हम में पाप और शरीर मल विद्यमान हैं; जो कुछ मेरे द्वाराअ कारण द्रोह किया गया है और जो मैंने अभीत (= निष्पाप; क्योंकि पापी होने पर कोई भयभीत होता है । अन्यथा नहीं) को ही अभिशप्त किया है । जल और सोम मुझे उस पाप से बचावें ॥ १७ ॥

सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रंह्या ऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतं द्वेषः ॥ १८ ॥

(जुहू में भरे हुए घृत के द्वारा सर्व प्रथम पशु के हृदय को छौंके । तदनन्तर शेष भी सर्वाङ्ग मांस को छौंके)। हे पशु हृदय तुम्हारा मन देवों के मन से संगत होवे और तुम्हारा प्राण देवों के मन से संगत होवे । हे वसे तुम अत्यन्त अल्प हो । तुम्हें अग्नि पकाकर विस्तार को प्राप्त करावे । जल तुम्हें मांस से पृथक् करें । वायु की गति के लिए और पूषा (= सूर्य) की गति के लिए । वसा को पीकर अन्तरिक्षस्थ राक्षसादि व्यथित होवें । वसा होम के द्वारा, इस प्रकार, दुर्भाग्य दूर हुआ (घृत और वसा को तलवार से मिश्रित करना) ॥ १८ ॥

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

घृत को पीने वाले हे देवों! तुम घृत का दान करो। वसा को पीने वाले हे पितृजनों! तुम वसा का पान करो। हे वसाज्य! तुम अन्तरिक्षस्थ देवों एवं पितरों की हवि हो। यह अग्नि में आहुति है। दिशा-प्रदिशा-आदिशा-विदिशा-उद्दिशा-दिशाओं के लिए यह वसाज्य आहुत है॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे निधीतः। देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति। देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

(पशुहवि को स्पर्श करते हुए—) आत्मा सम्बन्धी प्राण इस पशु के अंग-अंग में निहित किया गया और आत्मा सम्बन्धी उदान वायु भी इसके अंग-अंग में धरा गया। हे त्वष्टादेव! तुम्हारे द्वारा संवारे गये इस पशु का अंग-अंग यथापूर्व सन्धित हो उठे—जो संतुलितावयव भी काटने आदि के द्वारा विशृङ्खल हो गया है। हे पशो! इस प्रकार मंत्र के द्वारा पुनःसंधितांग तुम्हें, हमारी रक्षा के लिए, देवों में सम्प्राप्त होते हुए तुम्हारे मित्र तथा माता-पिता अनुमोदित करें॥ २० ॥

समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा-होरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा । मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा ॥ २१ ॥

(वध्य पशु की पकाकर रखी हुई गुदा के एकतिहाई भाग को तिरछा काट कर ग्यारह टुकड़े करके एक-एक मंत्र से एक-एक टुकड़े की आहुति देवे)। हे गुदहविः ! तुम समुद्र को प्राप्त हो ओ । यह आहुति है । हे गुदहविः ! तुम अन्तरिक्ष को प्राप्त होओ ।। यह आहुति है । हे गुदहविः ! तुम सवितादेव को प्राप्त होओ । यह आहुति है । हे गुदहविः ! तुम मित्र—वरुण को प्राप्त होओ । यह आहुति है । हे गुदहविः ! तुम दिन रात्रि रूप काल को प्राप्त होओ । यह आहुति है । हे गुदहविः ! तुम गायत्री प्रभृति सात च्छन्दों को प्राप्त हो ओ । यह आहुति है । हे गुदहविः ! तुम द्यावापृथिवी को प्राप्त होओ यह आहुति है । हे गुदहविः ! तुम यज्ञ के अधिदेवता विष्णु को प्राप्त होओ । यह आहुति है । हे गुदहविः । तुम दिव्य आकाश को प्राप्त होओ । यह आहुति है ।

हे गुदहविः ! तुम वैश्वानर अग्नि को सम्प्राप्त होओ । यह आहुति है । समुद्रादि देवसंघ । तुम सब मेरे मन को मेरे हृदय में ही नियन्त्रित करो । (स्वरुहोम करना)। हे स्वरो । तुम्हारा धूम द्युलोक को प्राप्त होवे । तुम्हारी ज्योति स्वर्ग को प्राप्त होवे । तुम अपनी भस्म के द्वारा इस पृथिवी कों भर दो । यह आहुति है ॥ २१ ॥

मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नो धाम्नो राजꣳस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियस्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥

(जिस लोहे की छड़ पर धर कर वध्य पशु का हृदय पकाया गया था, उस शूल को गीली सूखी भूमि के सन्धि स्थल में गाड़े ।

शूल को गाड़ कर अध्वर्यु—) हे हृदयशूल ! तुम जलों को हिंसित मत करो । हे शूल ! तुम ओषधियों को हिंसित मत करो ! (ऋत्विग्-यजमानादि जल को स्पर्श करते हुए—) हे राजन् वरुण ! पाप के जिस-जिस स्थान से हम भयभीत हो रहे हैं— तुम हमें उस-उस स्थान से मुक्त करो । हे वरुण ! लोग जो गवादि पशु को 'अहन्तव्य' कहते हैं, हे वरुण ! तो हम तो उसे इस प्रकार हिंसित ही कर रहे हैं । हे वरुण ! तुम हमें उस पाप से छुडाओ । हे वरुण ! तुम्हारी कृपा से जब हमारे लिए सुन्दर मित्र-से होवें और ओषधियाँ भी सुमित्र-सी होवें । हे वरुण ! जल और ओषधियाँ उस मनुष्य के लिए दुःखदायी मित्र के सदृश होवें—जो हम से द्वेष करता है और हम जिसे द्वेष करते हैं ॥२२॥

अध्याय सं. 19

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः । दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेरेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

सुरा से युक्त, देवों को बैठने के दर्भासनों से युक्त व वीरों से युक्त सौत्रामणि याग को महान् ऋत्विज नमस्कारों के साथ आगे बढ़ाते हैं। पूजनीय हम ऋत्विज और यजमान देवलोक में देवों में मंत्रों के द्वारा सोम को पहुँचाते हुए इन्द्र को मदमस्त बनावें ॥ ३२ ॥

यस्ते रसः संभृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य । तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

हे सुरे ! ओषधियों में वर्तमान जो तुम्हारा रस एकत्र किया गया है और सुरा के साथ अभिषुत सोम का जो बल है, उस मदकर रस से तुम यजमान, सरस्वती, अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि को तृप्त करो ॥ ३३ ॥

यदत्र रिप्रꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः । अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥

उस सोम का जो कुछ भाग इस सुरा में लग गया है और जिसे इन्द्र ने तरकीबों से शुद्ध करके पिया था, उस राजा सोम के अंश मात्र को मैं भी अपने शुभ मन के द्वारा यज्ञ में भक्षण करता हूँ ॥ ३५ ॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥ ३६ ॥

स्वधा (=अन्न) की ओर आने वाले पितरों के लिए यह स्वधा अन्न प्रदान है। उन्हें नमस्कार है। स्वधाप्रिय पितामहों के लिए यह स्वधान्न है। उन्हें नमस्कार है। स्वधाप्रिय प्रपितामहों के लिए यह स्वधान्न है। उन्हें नमस्कार है। (उक्त मंत्रों से सुराग्रहों से पितरों के लिए स्वधा करना। तदनन्तर उन ग्रहों के धोवन से अंगारों पर आहुतियाँ देना) पितरों ने सुरा का भक्षण किया। वे मदमस्त हुए। वे परितृप्त हुए। हे पितरो ! हाथ धोकर अब तुम सब शुद्ध होओ ॥ ३६ ॥

अध्याय सं. 21

होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

गाय के पैर में आहवनीयाग्नि में दैवी होता अग्नि, अश्विनौ, सरस्वती व इन्द्र का समिधा से यजन करे। उस यज्ञ में अज, धूम्र, मेष, मधु, गेहूँ, बेर व यवांकुर—ये सब भेषज होते हैं। तेज, बल, पयस्, सोमरस, सुरा, घृत व मधु इन्द्रादि देवों में व्याप्त होवें। हे मनुष्य होतः! तुम भी यजन करो ॥ २९ ॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

दैवी होता तनूनपाद् अग्नि, अश्विनौ, सरस्वती व इन्द्र का यजन करें। उस मधुमय पथ याग में भेंड़ी, मेष, बेर, इन्द्रयव तथा व्रीहि के अंकुर भेषज होते हैं। दूध, सोम, सुरा, घृत व मधु इन्द्रादि में व्याप्त होवें। हे मानव होतः! तुम घृत से यजन करो ॥ ३० ॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

दैवी होता नराशंस प्रयाजदेव, सरस्वती, अश्विनौ व इन्द्र का यजन करे। सुराकन्द, मेष, अश्विनौ का चान्द्ररथ, वपा, बेर, व्रीहि-यवांकुर आदि भेषज हैं। दूध, सोमरस, सुरा, घृत व मधु इन्द्र का बल-वीर्य बनें। हे मानव होतः! तुम घृत से यजन करो ॥ ३१ ॥

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

ऋत्विजों के द्वारा प्रशंसित दैवी होता इडा प्रभृति को आह्वान करता हुआ इडा, सरस्वती, अश्विनौ व इन्द्र आदि का यजन गाय-बैल के द्वारा प्रवर्धित करते हुए करे। यव, बेर, मधु, खील और माँड़ इन्द्र का भेषज हैं। दूध, सोम, सुरा, घृत व मधु इन्द्र के बल को बढ़ावें। हे मानव होतर्! तुम भी घृत से होम करो ॥ ३२ ॥

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ्नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग् दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

दैवी होता ऊन के समान कोमल बर्हि, वैद्य नासत्यौ-अश्विनौ तथा सरस्वती का यजन करे। बालोपेता अश्वा और सद्यःप्रसूता गाय इन्द्र के लिए भेषज दुहाती हैं। दूध, सोमरस, सुरा, घृत व मधु इन्द्र में व्याप्त होवें। हे मानव होतर्! तुम भी घृत से यजन करो ॥ ३३ ॥

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

दैवी होता दिशाओं के समान अवकाश वाले व शब्दवान् द्वारों, अश्विनौ, सरस्वती व इन्द्र का यजन करे। द्यावापृथिवी के साथ सरस्वती गाय होकर इन्द्र के लिए शुद्ध ज्योतिस्वरूप भेषज दुहाती है। दूध, सोम, सुरा, घृत व मधु इन्द्र में व्याप्त होवें। उसे बलवान् बनावें। हे मानव होतर्! तुम भी घृत से यजन करो ॥ ३४ ॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना सम-ञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३५ ॥

दैवी होता सुरूपा उषा, रात्रि, अश्विनौ, सरस्वती व इन्द्र का यजन करे। वे अश्विनौ दिन-रात्रि ज्योति, चित्त और श्री के साथ मासररूप ओषधि, श्येनपत्र तथा कान्ति को इन्द्र में संलग्न करते हैं। दूध, सोम, सुरा, घृत व मधु इन्द्र में व्याप्त होवें। हे मानव होतर्! तुम भी घृत से होम करो ॥ ३५ ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवानक्तं न भेषजैः शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३६ ॥

दैवी होता दिव्य होता अग्नि-वायु, वैद्य अश्विनौ और सरस्वती का यजन करे। दिन-रात्रि जागरणशीला सरस्वती इन्द्र के लिए सीता के द्वारा शक्ति रूप भेषज का दोहन करती है। दूध, सोम, सुरा, घृत व मधु इन्द्र में व्याप्त हो। हे होतर्! घृत से यजन करो ॥ ३६ ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवो-ऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३७ ॥

दैवी होता इडा, भारती व सरस्वती देवियों, इन्द्र और अश्विनौ का यजन करता है। सरस्वती वेदवाणी के द्वारा इन्द्र के लिए त्रिधातु धूम्र, मेष व ऋषभ से भेषज, द्योतमान् रूप, तेज व बल का दोहन करती है। दूध, सोम, सुरा, घृत व मधु इन्द्र में व्याप्त होवें। हे होतर्! तुम घृत से यजन करो ॥ ३७ ॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्र-मश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग्यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३८ ॥

दैवी होता सुवीर्यवान्—सर्वहितू त्वष्टा, इन्द्र, अश्विनौ और वैद्या सरस्वती का यजन सोद्यम वैद्यभूत वृक, सुरा और मासर से यजन करे। इस प्रकार यज्ञ के द्वारा इन्द्र में ओज, वेग, वीर्य, श्री व यश होवें। दुग्ध-सोमादि इन्द्र में व्याप्त होवें। हे होतर्! घृत से यजन करो ॥ ३८ ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३९ ॥

दैवी होता पशुओं के संस्कर्त्ता यूप, भयंकर-क्रोधी-व्याघ्र-से राज्य शतप्रज्ञ इन्द्र, अश्विनौ तथा सरस्वती का यजन अन्न से करे। वैद्या सरस्वती इन्द्र के लिए क्रोध और वीर्य को दुहती है। दूध, सोम, सुरा, घृत व मधु इन्द्र में व्याप्त होवें। हे होतर्! घृत से यजन करो ॥ ३९ ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा च्छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳ सरस्वत्यै स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहस इन्द्रियꣳ स्वाहाग्निं न भेषजꣳ स्वाहा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳसवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ४०

दैवी होता अग्नि का यजन करे। यजमान घृत-बिन्दुओं को स्वाहा बोले। विभिन्न चर्बियों को पृथक्-पृथक् स्वाहा कहे। अश्विनौ के लिए छाग को स्वाहा बोले। सरस्वती के लिए मेष को स्वाहा बोले। सिंह-से बल वाले इन्द्र के लिए बैल को स्वाहा बोले। भेषज को स्वाहा बोले। सोम शक्ति है, स्वाहा बोले। सुत्राता इन्द्र, सविता तथा वैद्यों के स्वामी वरुण को स्वाहा बोले। यूप के प्रिय भेषज पशु को स्वाहा बोले। घृत पीने वाले देवताओं को स्वाहा बोले। भेषज का सेवन करने वाले अग्नि को स्वाहा बोले। दुग्धादि इन्द्र में व्याप्त होवें। हे होतर्! घृत से यजन करो।।40।।

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताᳪ हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताᳪ हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताᳪ हविर्होतर्यज ॥ ४१ ॥

दैवी होता अश्विनौ का यजन करे। अश्विनौ छाग की वपा के मेद का सेवन करें। हे होतर् ! हविः का होम करो। दैवी होता सरस्वती का यजन करे। वह सरस्वती मेष की वपा के मेद को आस्वादित करे। हे होतर् ! हविः का यजन करो। दैवी होता इन्द्र का यजन करे। वह बैल की वपा के मेद का आस्वादन करे। हे होतर् ! हविः होम करो ॥ ४१ ॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रᳪ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳪ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥ ४२ ॥

दैवी होता अश्विनौ, सरस्वती तथा सुत्राता इन्द्र का यजन करे। हे अध्वर्युओं ! यह तुम्हारे सोम तो बड़े रमणीय हैं। यह छाग, मेष और बैलों के साथ अभिपुत हुए हैं। शष्प, यवांकुर और खीलों के द्वारा यह बड़े तेजः को प्राप्त हो गये हैं। मासर के द्वारा शोधित यह बड़े मदकारी हैं। शुद्ध यह दूध-मिश्रित होकर तो अमृतप्राय हो गये हैं। हे देवों ! अब यह होम की ओर चल चुके हैं। उन्हें अश्विनौ, सरस्वती, सुत्राता व वृत्रघाती इन्द्र आस्वादित करें। वे सब देव सोममय मधुर रस का पान करें—मदमस्त होवें। वे हविः भक्षण करें। हे होतर् ! यजन करो ॥ ४२ ॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाश्विना जुषेताꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४३ ॥

दैवी होता अश्विनौ का यजन करे। आज वे अश्विनौ छाग के मांस का भक्षण करें। मध्यभाग से यह मेद निकाला गया है— राक्षसादि शत्रुओं के खाने के पूर्व ही और मांसाहारी मनुष्यों की नाझपटी के भी पूर्व ही—अश्विनौ इसे अवश्य ही भक्षण करें। यह निश्चय ही सदा घास में रमणशील थे। यव के प्रथम अंकुरों में निरत थे। स्वयं ही क्षरित हुए और सौ-सौ स्तुतियों से स्तुत्य; अग्नि के द्वारा परिपक्व, मोटे-ताजे अंगों के पास से निकाले गये, बगल से, चूतड़ों से, योनि आदि से; खोद-काट कर अंग-अंग से निकाले गये इन मांस-वपाखण्डों को अश्विनौ भक्षण करें। वे तृप्त होवें। हे होतर्! तुम वपाहविः का होम करो ॥ ४३ ॥

होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवꣳ सरस्वती जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४४ ॥

दैवी होता सरस्वती का यजन करे। सरस्वती मेष के मांस का भक्षण करे। शेष मंत्र वैंतालीस के निम्न भाग के समान ॥ ४४ ॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्नन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाᳪं सुमत्क्षराणाᳪं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताᳪं हविर्होतर्यज ॥ ४५ ॥

दैवी होता इन्द्र का यजन करे। वह इन्द्र बैल का मांस भक्षण करे। शेष पूर्ववत् ॥ ४५ ॥

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथाᳪंसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान्प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताᳪं हविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

दैवी होता यूप का यजन करे। वह यूप अत्यन्त सुन्दर और मजबूत रस्सी के द्वारा पशुओं को अपने में बाँध कर देवोपकार का करने वाला है। जिस यूप में अश्विनौ के छाग की हविः के प्रिय लभ्यस्थान हैं। जहाँ सरस्वती के मेष की हविः की प्राप्ति के प्रिय स्थान हैं और जहाँ इन्द्र के बैल की हविः की प्राप्ति के प्रिय स्थान हैं। जहाँ अग्नि की हविः की प्राप्ति के प्रिय स्थान हैं। जहाँ सोम के प्रिय स्थान हैं। जहाँ सुत्राता इन्द्र के प्रिय स्थान हैं। जहाँ सविता के प्रिय स्थान हैं। जहाँ वरुण के प्रिय स्थान है। जहाँ यूप के प्रिय अन्न हैं। जहाँ घृतपायी देवों के प्रिय स्थान हैं। जहाँ होता अग्नि के प्रिय स्थान हैं। वहाँ इन पशुओं को अत्यन्त विक्षुब्ध करके, स्तुति-उपस्तुति करके वनस्पति यूपदेव इन्हें उन-उन स्थानों में स्थापित करे। वनस्पति देव ऐसा ही करे। वह हविः का सेवन करे। हे होतर् ! यजन करो ॥ ४६ ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳस्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वं महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४७ ॥

दैवी होता कल्याणकारी अग्नि का यजन करे। अग्नि ने अश्विनौ के छाग के मांस से प्रिय स्थानों का यजन किया। सरस्वती के मेष के मांस से प्रिय स्थानों का यजन किया। इन्द्र के ऋषभ की मांसहविः से प्रिय स्थानों का यजन किया। अग्नि के प्रिय स्थानों का यजन किया। सोम के प्रिय स्थानों का यजन किया। सुत्राता इन्द्र के प्रिय स्थानों का यजन किया। सविता के प्रिय स्थानों का यजन किया। वरुण के प्रिय स्थानों का यजन किया। वनस्पति यूप के प्रिय अन्नों का यजन किया। घृतपायी देवों के प्रिय स्थानों का यजन किया। होता अग्नि के प्रिय स्थानों का यजन किया। स्वयं अपनी महिमा का यजन करो। प्रजाएँ यजन-कारिणी होवें। वह अग्नि यज्ञों का सेवन करे। हे होतर्! हविः का होम करो॥ ४७॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशान्बभ्रन्नश्विभ्यां छागꣳ सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऋषभꣳ सुन्वन्नश्विभ्याꣳ सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान्॥ ५९॥

पकाने योग्य हवियों को पकाते हुए, पुरोडाश को पकाते हुए, अश्विनौ के लिए छाग को यूप से बाँधते हुए, सरस्वती के मेष को इन्द्र के लिए; अश्विनौ, सरस्वती तथा सुत्राता इन्द्र के लिए सुरा-सोम को अभिषुत करते हुए आज इस यजमान ने सचमुच ही अग्नि को वरण कर लिया है॥ ५९॥

सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षꣳस्तान्मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान्॥ ६०॥

अश्विनौ के लिए छाग, सरस्वती के लिए मेष और इन्द्र के लिए बैल के द्वारा आज सत्य ही वनस्पति देव यज्ञशाला में उपस्थित हो रहे हैं। अश्विनौ प्रभृति ने पशुओं के मेद से प्रारम्भ करके शेष अंगों तक का भक्षण किया। पकाये गये पशु-शरीराङ्गों को भी उन्होने स्वीकार किया। वे इन्द्रादि पुरोडाशों को खाकर वृद्धि को प्राप्त हुए। अश्विनौ, सरस्वती और सुत्राता इन्द्र ने सुरा-सोमों का पान किया ॥ ६० ॥

अध्याय सं. 22

हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

(उनचास 'प्रक्रम' संज्ञका आहुतियाँ देना।) हिंकार, हिंकृत, क्रन्दन, अवक्रन्दन, प्रोथ, प्रपोथ, गन्ध, घ्रात, निविष्ट, उपविष्ट, संदित, बल्गन, आसीन, शयान, सुप्त, जाग्रत, कूजनरत, प्रबुद्ध, जमुहाई लेने वाले, उद्दीप्त, संहत शरीर, उपस्थित, चलित व प्रचलित अश्व के लिए यह आहुति है ॥ ७ ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत्पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥८॥

गति प्राप्त, धावित, वेगवान्, क्षिप्रगति, शूकरने वाले, शुकृत, बैठे हुए, उत्थित, वेग, बल, विवर्तमान, विवृत्त, धड़ हिलाने वाले, कम्पितगात, सेवित, सुनने वाले, देखने वाले, देखे गए, पलक मारने वाले, जो कुछ वह खाता है उसके लिए, जो कुछ वह पीता है उसके लिए, जितना कुछ वह मूतता है उसके लिए, कर्मकारी और कृतकर्म अश्व के लिए यह आहुति है ॥ ८ ॥

अध्याय सं. 23

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः । अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शर्म्यन्तीः ॥ ३७ ॥

चाँदी, सोना तथा ताम्बे या लोहे की गुच्छीकृता सुइयाँ अश्व के शरीर में छेद करने के कर्मों के द्वारा अश्व-शरीर से संयोग प्राप्त करती हैं । वेगवान् अश्व की त्वचा में छिद्र बनाती हुई सुइयाँ सीमा का निर्माण करें ॥ ३७ ॥

ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

हे अश्व ! संवत्सर के तेज से ऋतु के अनुसार ऋतुएँ तुम्हारी अस्थि-ग्रन्थियों को काटें । वे कर्मों के द्वारा तुम्हें हविः भाव प्राप्त करावें ॥ ४० ॥

अर्धमासाः परूंषि ते मासा आच्छर्यन्तु शम्यन्तः । अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

हे अश्व ! अर्धमास और मास संस्कार करते हुए तुम्हारे पर्वों को काटें । दिन-रात्रि व मरुत तुम्हारे लघु अंगों को सन्धित करें ॥ ४१ ॥

दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छर्यन्तु वि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४२॥

दैवी अध्वर्यु अश्विनौ तुम्हें काटें और हविः रूप प्रदान करें । संस्कृत करती हुई पर्वशः सीमारेखाएँ वे देव तुम्हारे शरीर में बनावें ॥ ४२ ॥

अध्याय सं. 25

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३२ ॥

अश्व के मांस का जो अंश मक्खी ने खा लिया है अथवा जो यूप में–तलवार में लगा रह गया है। काटने वाले कसाई के हाथों में या नखों में जो मांस लगा रह गया है—हे अश्व ! वह सब तुम्हारा अब देवों में प्राप्त ही होवे ॥ ३२ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति । सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ ३३ ॥

छोटी आँत में जो अर्धपक्व तृणादि है और काटने पर बाहर निकलता हैं तथा जो कच्चे मांस की गन्ध है। काटने वाले पुण्य-जन उस सबको ठीक करें और साथ ही पकाने वाले इस अश्व-मेधीय अश्वमांस को ठीक-ठीक पकावें—न तो गला ही दें और न कच्चा उतारें ॥ ३३ ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिशूलं निहतस्यावधावति । मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ३४ ॥

हे अश्व ! लोहे की छड़ के ऊपर रखकर पकाए जाते हुए तुम्हारे मांस से जो भाग नीचे गिर जाता है, वह न तो भूमि में ही लिथड़ जावे और न तृणादि में ही लिपट जावे। वह सब तो कामना करने वाले देवों को प्रदानित होवे ॥ ३४ ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभि-र्निर्हरेति । ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ३५ ॥

जो अश्व को परिपक्व होता हुआ देखते हैं और जो यह कहते हैं कि—'अहा ! क्या सुगन्ध आ रही है । अच्छा, अब ले आओ'। और भी, जो अश्व के मांस की भिक्षा मांगते हैं, उन सबका प्रयत्न हमें प्रोत्साहित करे ॥ ३५ ॥

यन्नीक्षणं माꣳस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि । ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

मांस पकाने वाली बटलोई का जो पुनः-पुनः देखा जाना है; पकने पर रसे को उड़ेलने के जो बर्तन हैं; रसे से गर्मी को न निकलने देने के लिए जो ढक्कन हैं; मांसचरू के हृदयादि अंगों को बताने वाले जो यष्टी प्रभृति साधन हैं और काटने की जो तलवार प्रभृति हैं—वे सब अश्व को सुशोभित करते हैं (=उसे देवयोग्य बनाते हैं) ॥ ३६ ॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि-विक्त जघ्रिः । इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

ईषद् धूमवान् अग्नि, हे अश्व ! पकाए जाते समय तुम्हें सध्वनि न बनावे—मांस से खद्बद्-खद्बद् की ध्वनि न उठावे। अग्नि से प्रदीप्त स्थानी, जो तुम्हारी गन्ध को सतत सूंघ रही है, हिले-डुले नहीं। याजित, भक्षित, उद्यमित और वषट्कृत उस अश्वमांस को देवता ग्रहण करते हैं ॥ ३७ ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः। यच्च पपौ यच्च घासि जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८ ॥

निकलना, बैठना, लोटना और जो घोड़े का पादबन्धन है। अश्व ने जो जल पिया है, जो घास खाई है; हे अश्व ! वह सब तुम्हारा अब देव प्राप्त ही होवे ॥ ३८ ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै। संदानमर्वन्तं पड्वीशं प्रियादेवेष्वायामयन्ति ॥ ३९ ॥

अश्व के लिए जो वस्त्र ओढ़ाते हैं, जो वस्त्र नीचे बिछाते हैं; जो स्वर्ण गुहरें इसके साथ बाँधते हैं; घोड़े के शिर का जो बाँधा जाना है और जो पाद-बन्धन है, यह सब प्रिय कर्म घोड़े को देवों में प्राप्त होने का प्रयत्न कराने वाले हैं ॥ ३९ ॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद। स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ ४० ॥

हे अश्व ! घुड़सवार ने अपने तेज के साथ तुम पर सवारी कस कर, तुम्हारे शू-शू करने पर भी, एड़ी या चाबुक से, सवारी के समय जो पीड़ा दी है, उन सबको स्रुवा के द्वारा यज्ञों में हविः के समान मैं मंत्र के द्वारा दूर करता हूँ ॥ ४० ॥

चतुस्त्रिꣳशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति । अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशास्त ॥ ४१ ॥

वेगवान् और देवप्रिय अश्व की चौंतीस वंक्रियों को तलवार पार करती है । हे ऋत्विजो ! ज्ञान के साथ एक-एक अंग की घोषणा करके अब तुम लोग इसके अंग-अंग अछिद्र (=दोष रहित) बनाओ और काटो ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः । या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ ॥ ४२ ॥

एक प्रजापति ही अश्व को काटनेवाला है और द्यावापृथिवी, ये दो उसके नियंत्रक होते हैं । हे अश्व ! मैं अध्वर्यु तुम्हारे जिन-जिन अंगों को काटकर अलग करता हूँ—उन-उन मांसपिण्डों को मैं अग्नि में होम कर देता (—स्वोपयोग में नहीं लाता) हूँ ॥४२॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते । मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ ४३ ॥

हे अश्व ! स्वर्ग में जाते हुए तुम्हें तुम्हारा प्रिय शरीर तापित न करे और न ही यह तलवार तुम्हारे शरीर को रोके (—शरीर के सभी अंगों को काटकर देवों समर्पित करने दे—रोके नहीं)। यह लालची व अकुशल कसाई भी शास्त्रसम्मत क्रम को छोड़कर जहाँ तहाँ से काट-काटकर व्यर्थ न कर दे ॥ ४३ ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२॥ इदेषि पथिभिः सुगेभिः । हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ ४४ ॥

हे अश्व ! यज्ञार्थ काटे जाकर न तो तुम मरोगे ही और न विनष्ट ही होओगे। यहाँ से तो अब तुम देवमार्गों से सीधे देवों को ही प्राप्त होओगे। तुम्हारे रथ में इन्द्र के हरी तथा मरुतों के पृषती अश्व संयोजित होवेंगे। अश्विनौ के रासभ के आगे भी वेगवान् अश्व आ जाएगा ॥ ४४ ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ२॥ उत विश्वापुषꣳ रयिम् । अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनताꣳ हविष्मान् ॥ ४५ ॥

देवत्व को प्राप्त वेगवान् अश्व हमें सुन्दर गायों-अश्वों वाला करे। सुन्दर पुरुषार्थी पुत्रों वाला बनावे। वह हमें सबके पोषण योग्य धन देवे। अखण्डव्य अश्व हमें निष्पाप बनावे। हविर्युक्त अश्व हमें राज्य प्रदान करे ॥ ४५ ॥

अध्याय सं. 28

हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ ११ ॥

होता इन्द्र का यजन करे। घृत के देवों के लिए स्वाहा। मेद के देवों के लिए स्वाहा। मेदविन्दुओं के लिए स्वाहा। स्वाहा आकृति वाले देवों के लिए स्वाहा। हव्य की सूक्तियों वाले देवों के लिए स्वाहा। प्रसन्न होते हुए घृतपायी देवता घृत पिएँ। इन्द्र भी घृत पिये। हे होतर्! यजन करो ॥ ११ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन । अधुक्षं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन । त्वामद्य ऋषेo ॥ २३ ॥

आज तो इस यजमान ने अग्नि को होता वरण किया है। पकाने योग्य सामग्रियों को पकाते हुए, पुरोडाश को पकाते हुए तथा इन्द्र के लिए छाग को बाँधते हुए। यह वनस्पति यूपदेव भी इन्द्र के लिए बकरे को बाँधते हुए यज्ञस्थल में सुष्ठु उपस्थित हुआ है। धारण किया। अश्विनौ प्रभृति देवों ने यजमान के द्वारा प्रदत्त पशुओं को मेद से प्रारम्भ करके सर्वाङ्ग तक भक्षण किया। पके हुए शेष अवयवों को भी ग्रहण किया। वे पुरोडाश से वृद्धि को प्राप्त हुए। हे अग्ने! आज आर्षेय ढंग से होता ने तुम्हें ही वरण किया है ॥ २३ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम्। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन। अधत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन ॥ त्वामद्य ऋषे० ॥ ४६ ॥

इस यजमान ने आज अग्नि को पकाने योग्य सामग्रियों को पकाते हुए, पुरोडाश को पकाते हुए व अन्नधाता इन्द्र के लिए छाग को आलम्भन करते हुए अपना होता वरण किया है। वनस्पति यूपदेव भी आज अन्नधाता इन्द्र के लिए छाग को बाँध कर ठीक यज्ञस्थल में उपस्थित हुआ है। उन देवों ने मेद से लेकर अन्य अंगों तक पशुओं का भक्षण किया। उन्होंने पकाए जाते हुए पशु के अंग-प्रत्यगों को भी ग्रहण किया। इन्द्र पुरोडाश से वर्धित हुआ। हे अग्ने! आज इस यजमान ने आर्षेय ढंग से तुम्हें ही अपना होता वरण किया है।—आदि मंत्र २३ के समान ॥ ४६ ॥

अध्याय सं. 35

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्परा के। मेदसः कुल्या उप तान्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सन्नमन्ताꣳ स्वाहा ॥ २० ॥

हे जातवेदस् अग्ने! पितरों के लिए तुम वपा को वहन करो—दूर जहाँ तुम इन्हें निहित जानते हो। उन पितरों के लिए मेद की लघु सरिताएँ बह चलें और हमें उनके यथार्थ आशीर्वाद प्राप्त होवें। हे अग्ने! यह तुम्हारे लिए आहुति है ॥ २० ॥

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।।

यजुर्वेद 9/23

हमें स्वयं जागृत होकर और आगे बढ़कर राष्ट्र को जागृत करना चाहिये ताकि अपनी व्यक्तिगत तथा समाज की समस्त बुराइयों को दूर किया जा सके।

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S (अ.प्रा)

अध्यक्ष

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान

सेक्टर 6B वृन्दावन

रायबरेली रोड, लखनऊ, 226029

मो. नं0 : 9453849042